Vol. 9 | Issue-3 JULY-SEP. 2026

RNI : UPBIL/2020/79032

सहयोग राशि : मात्र ₹ 30/- प्रति

फार्ड संवाद
FAARD SAMVAAD

FAARD FOUNDATION फार्ड फाउण्डेशन
FOUNDATION FOR ADVANCEMENT OF AGRICULTURE AND RURAL DEVELOPMENT
कृषि प्रगति एवं ग्रामीण विकास संस्था

कृषि, ग्रामीण विकास, शिक्षा, पर्यावरण, स्वास्थ्य व उद्यमिता की दिशा में समर्पित

सन्देश

कृषि उद्यमिता

कृषि उद्यमिता कृषि और उद्यमिता का ऐसा संगम है, जिसमें व्यावसायिक सिद्धांतों और नवाचारों के माध्यम से पारंपरिक खेती को एक आधुनिक, लाभकारी, बाजार–उन्मुख और टिकाऊ व्यवसाय में परिवर्तित किया जाता है। इसके अंतर्गत कृषि क्षेत्र में नए व्यवसायों की योजना बनाना, उन्हें शुरू करना और उनका प्रभावी प्रबंधन करना शामिल है। खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने, गांवों में रोजगार के अवसर बढ़ाने और आर्थिक विकास को गति देने में कृषि उद्यमिता की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रौद्योगिकी और नवाचार का प्रभावी उपयोग करते हुए कृषि उद्यमी खेती के भविष्य का निर्माण कर रहे हैं। इसके अंतर्गत बाजार में उपलब्ध अवसरों की पहचान करना, संसाधनों का उचित प्रबंधन करना तथा नवीन उत्पादों और सेवाओं को बाजार तक पहुँचाने के लिए वित्तीय एवं व्यक्तिगत जोखिम उठाना शामिल है, जिसका उद्देश्य आर्थिक और सामाजिक मूल्य का सृजन करना है। कृषि उद्यमिता केवल फसल उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें उत्पादों का मूल्य संवर्धन, बेहतर विपणन, प्रसंस्करण और टिकाऊ कृषि पद्धतियाँ भी शामिल हैं। इसका उद्देश्य ऐसे व्यवसाय विकसित करना है जो लाभदायक होने के साथ–साथ खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय आवश्यकताओं को भी पूरा करें। कृषि उद्यमिता किसानों को केवल उत्पादक नहीं, बल्कि व्यवसायी भी बनने का अवसर देती है। इससे उन्हें अपने उत्पाद का बेहतर मूल्य प्राप्त करने में मदद मिलती है। कृषि उद्यमी स्थानीय स्तर पर रोजगार के नए अवसर सृजित कर रहे हैं और ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर होने वाले पलायन को भी कम कर रहे हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से वे सीधे उपभोक्ताओं से जुड़ रहे हैं, जिससे बिचौलियों पर निर्भरता कम हो रही है। हालाँकि कृषि उद्यमिता में कई चुनौतियाँ भी हैं, लेकिन सरकारी अनुदान, वेंचर कैपिटल और क्राउडफंडिंग जैसे नए वित्तीय साधनों के कारण वित्तीय सहायता प्राप्त करना पहले की तुलना में आसान हो रहा है। कृषि उद्यमिता केवल एक करियर विकल्प नहीं, बल्कि एक अधिक मजबूत, कुशल और टिकाऊ खाद्य व्यवस्था की दिशा में बढ़ता हुआ आंदोलन है। वैश्विक स्तर पर कृषि उद्यमिता को आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण माध्यम माना जाता है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) और विश्व बैंक जैसी संस्थाएँ विभिन्न योजनाओं और वित्तीय सहायता के माध्यम से इसे बढ़ावा दे रही हैं। भारत में कृषि उद्यमिता के प्रमुख आधार हैं– नवाचार, मूल्य संवर्धन, बाजार–उन्मुख सोच, जोखिम प्रबंधन, मानव संसाधन प्रबंधन, स्थिरता और नई तकनीकों को अपनाना। इसके सामने कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे भूमि, मशीनरी और तकनीक में अधिक प्रारंभिक निवेश, मौसम और कीट–रोगों से जुड़ा जोखिम, जटिल आपूर्ति श्रृंखला, बाजार तक पहुँच की कठिनाइयाँ, निवेश पर लाभ मिलने में अधिक समय और सरकारी नीतियों एवं सब्सिडी पर निर्भरता। उच्च शिक्षा संस्थानों में कृषि उद्यमिता से जुड़ा माहौल, अनुसंधान पार्क, उद्भवन केंद्र और नवाचार की संस्कृति शोधकर्ताओं को अपने शोध को उत्पादों और सेवाओं में बदलने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में नए कृषि उद्यम स्थापित करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। इस प्रकार, कृषि उद्यमिता के विकास में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से कृषि उद्यमियों को वित्तीय सहायता, बिना गारंटी के ऋण तथा उद्भवन सहायता प्रदान कर रही है। इन योजनाओं का उद्देश्य नए स्टार्टअप को प्रोत्साहित करना, कृषि आपूर्ति श्रृंखला को मजबूत बनाना और सूक्ष्म खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना को बढ़ावा देना है।

कृषि उद्यमियों के लिए उपलब्ध प्रमुख सरकारी योजनाओं में स्टार्ट–अप इंडिया सीड फंड योजना, एग्री–उड़ान (AGRI&UDAN), आरकेवीवाई–रफ्तार (RKVY&RAFTAAR), कृषि अवसंरचना कोष (AIF), पीएम–एफएमई योजना, मुद्रा ऋण योजना तथा पीएम–कुसुम योजना शामिल हैं। शिक्षित युवा और युवा किसान इन योजनाओं का लाभ उठाकर अपने कृषि उद्यम स्थापित कर सकते हैं और अपने ही ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर पैदा कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, कृषि और किसानों का भविष्य केवल पारंपरिक खेती में नहीं, बल्कि कृषि उद्यमिता के विकास में निहित है।

प्रो. पंजाब सिंह, अध्यक्ष

इस अंक में :

संदेश	1
सम्पादकीय	2
पूर्वी उत्तर प्रदेश में लाभकारी एवं टिकाऊ कृषि के लिए गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली	3
धान की सीधी बुवाई से लाभ	8
खरीफ मौसम में सब्जियों की वैज्ञानिक खेती कैसे करें	10
अरहर की उन्नत उत्पादन तकनीक एवं समेकित कीट-रोग प्रबंधन : पूर्वी उत्तर प्रदेश के परिपेक्ष में	13
गतिविधियाँ	16

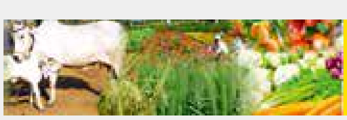

कृषि, ग्रामीण विकास, शिक्षा, पर्यावरण, स्वास्थ्य व उद्यमिता की दिशा में समर्पित

सम्पादकीय मण्डल

अध्यक्ष
प्रो. पंजाब सिंह
पूर्व सचिव
कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग,भारत सरकार
एवं
पूर्व महानिदेशक
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान सम्पादक
प्रो. आर. एम. सिंह
पूर्व डीन
कृषि विज्ञान संस्थान, बीएचयू, वाराणसी

प्रबन्ध सम्पादक
प्रो. एस. आर. सिंह
पूर्व निदेशक
कृषि विज्ञान संस्थान, बीएचयू, वाराणसी

सम्पादक
डॉ. राजेश सिंह
पी.आर.ओ., बीएचयू, वाराणसी

उप-सम्पादक
डॉ. उमेश सिंह
ट्रेनिंग एवं प्लेसमेंट अधिकारी, बीएचयू, वाराणसी

सहायक सम्पादक
श्री चंदर शेखर
ए.पी.आर.ओ., बीएचयू, वाराणसी

कोषाध्यक्ष
राम कुमार राय
शिवांश एग्रो प्रोड्यूसर कंपनी, गाजीपुर
सम्पर्क नं. 7753073362

रजिस्टर्ड कार्यालय
फार्ड फाउण्डेशन
सरस्वती कुंज, नरायणपुर (डाफी) पोस्ट ऑफिस-नैपुरा, जिला-वाराणसी-221 011 (उ.प्र.)
e-mail: faardvaranasi@gmail.com
Website : www.faard.org

सम्पादकीय

आवश्यक है खेती की सेहत का सुधारना

विश्व की ढाई प्रतिशत जमीन पर दुनिया की 17.8 प्रतिशत जनसंख्या का पेट भरना निश्चित रूप से चुनौतीपूर्ण कार्य है। अब तक देश के किसान इस चुनौती पर खरे उतरे है, लेकिन मिट्टी की उर्वरता में उत्तरोतर ह्रास से भविष्य की राह आसान नहीं है। पहले किसान एक साथ कई फसलें बोते थे और एक ही फसल की अनेक किस्म उपलब्ध थी। दरअसल हरित क्रान्ति के दौर में क्षेत्र विशेष की परिस्थिति की दशाओं की उपेक्षा कर फसलें ऊपर से थोपी गई। जैसे दक्षिण भारत में गेहूँ और पंजाब व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में धान की खेती। इन्हीं फसलों की खेती होने से किसानों को अच्छा मूल्य मिलता रहा। इससे दलहनी, तिलहनी एवं अन्य पोषणयुक्त फसलें (मिलेट्स, व औद्यानिक फसले) अनुर्वर और सिमान्त भूमियों पर सीमित रह गई। इस प्रकार फसल चक्र व्यक्त, जिससे मिट्टी की उर्वरता, नमी, भुरभुरेपन में कमी आनी शुरू हुई। इसकी भरपाई के लिए रासायनिक उर्वरको, कीटनाशक रसायनों, सिचाईं जल का प्रयोग बढ़ा और हरी खाद, कम्पोस्ट आदि भुला दिए गए। रासायनिक खादों और कीटनाशकों के प्रयोग से शुरू में उत्पादकता तो बढ़ी, लेकिन आगे चलकर उसमें गिरावट आने लगी। उदाहरण के लिए 1960 में एक किलो रासायनिक खाद डालने पर 25 किलो की बढ़ोतरी होती थी, जो 1975 में 15 किलो, और 2014 में 4 किलो रह गई। इन रसायनों के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरकता में ह्रास होने लगा और जीवांश की मात्रा मानक से काफी कम हो गया है। इस परिपेक्ष्य में आवश्यकता है खेती की सेहत को सुधारने के लिए नीतिगत कार्यक्रमों की पहल की जाए। इस दिशा में स्वस्थ धरा–खेत हरा थीम के साथ मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना शुरू की गयी। किस मिट्टी में किस उर्वरक का प्रयोग किया जाए इसकी जानकारी मृदा स्वास्थ्य कार्ड से मिलती है। इसमें उर्वरकों के समन्वित, एकीकृत व संतुलित उपयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है।

मिट्टी की सेहत सुधारने के लिए सरकारी स्तर पर फसल विविधीकरण, समन्वित खेती (फसल के साथ खाद्यान्न के साथ औद्यानिक फसलें, पशु व मत्स्य पालन आदि), व वैकल्पिक भू–उपयोग (कृषि वानिकी) आदि पर पहल किया जा चुका है। सरकार ने दलहनी–तिलहनी फसलों और मोटे अनाजों के समर्थन मूल्य में भरपूर बढ़ोतरी की है। देश का उत्पाद गुणवत्ता मापदण्डों पर खरा उतरे इसलिए जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जा रहा है। बढ़ती जनसंख्या को रोजगार व खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराने, आमदनी बढ़ाने, प्रतिस्पर्धी बनाने, लागत कम करने व मृदा स्वास्थ्य सुधारने में जैविक खेती उपयोगी सिद्ध होगी।

कृषि हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का आधार है तो पशुपालन हमारी कृषि का प्रमुख संबल है। इनका धरोहर हमारी मिट्टी है। मिट्टी की सुरक्षा और पोषण होगा तो यह हमें भोजन, ईंधन, वस्त्र, औषधि प्रदान करेगी, और हमारे चारों ओर सौन्दर्य बिखेरगी।

-संपादक

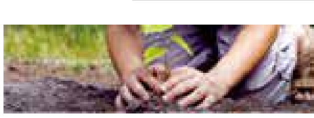

जैविक खेती करें किसान
सुधरे भूमि हो धनवान.

पूर्वी उत्तर प्रदेश में लाभकारी एवं टिकाऊ कृषि के लिए गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली

सुनील कुमार
निदेशक, भाकृअनुप–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ–250110
कमलेश कुमार
वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान) भाकृअनुप–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ–250110

1. प्रस्तावना

पूर्वी उत्तर प्रदेश, देश के प्रमुख कृषि प्रधान क्षेत्रों में से एक है, जहाँ कृषि न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार है बल्कि लाखों किसानों की आजीविका का प्रमुख साधन भी है। यह क्षेत्र 23°51′ से 28°30′ उत्तरी अक्षांश तथा 81°31′ से 84°39′ पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है तथा नेपाल की सीमा से लगा हुआ है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के 18 जिले भौगोलिक, सामाजिक एवं कृषि की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यहाँ की जलवायु आर्द्र उपोष्णकटिबंधीय (Humid Sub&tropical) है, जबकि कुछ भाग अर्ध–शुष्क परिस्थितियों वाले हैं। क्षेत्र की कृषि मुख्यतः मानसूनी वर्षा पर निर्भर करती है तथा बाढ़, सूखा एवं मृदा लवणता जैसी समस्याएँ कृषि उत्पादन को प्रभावित करती रहती हैं। अधिकांश कृषक छोटे एवं सीमांत वर्ग के हैं, जिनकी औसत जोत का आकार अपेक्षाकृत कम है। ऐसे परिदृश्य में किसानों की आय, रोजगार एवं संसाधनों की स्थिरता सुनिश्चित करना कृषि विकास की प्रमुख चुनौती है।पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान–गेहूँ प्रमुख फसल प्रणाली है, किन्तु सिंचित क्षेत्रों में गन्ना एक अत्यंत महत्वपूर्ण नगदी फसल के रूप में स्थापित है। गन्ना इस क्षेत्र की कृषि अर्थव्यवस्था, चीनी उद्योग तथा ग्रामीण रोजगार का प्रमुख आधार है। कुशीनगर, देवरिया, गोरखपुर, महाराजगंज, बस्ती, सिद्धार्थनगर, बलरामपुर, गोंडा तथा बहराइच जैसे जिले गन्ना उत्पादन के प्रमुख केंद्र हैं। हाल के वर्षों में पूर्वी उत्तर प्रदेश में गन्ने का क्षेत्रफल लगभग 5.5–6.0 लाख हेक्टेयर तक पहुँच गया है, जो इसकी बढ़ती लोकप्रियता और आर्थिक महत्व को दर्शाता है। क्षेत्र में स्थापित अनेक चीनी मिलें एवं अन्य कृषि–आधारित उद्योग गन्ना उत्पादन पर निर्भर हैं, जिससे यह फसल किसानों के साथ–साथ क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण बन जाती है।

यद्यपि गन्ना किसानों को अपेक्षाकृत स्थिर आय प्रदान करता है, फिर भी केवल गन्ना अथवा एकल फसल आधारित खेती दीर्घकाल में कई समस्याओं को जन्म देती है। लगातार एक ही फसल लेने से मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, उत्पादन लागत में वृद्धि, कीट एवं रोगों का प्रकोप, जल संसाधनों पर बढ़ता दबाव तथा बाजार मूल्यों में उतार–चढ़ाव जैसी चुनौतियाँ सामने आती हैं। इसके अतिरिक्त अधिकांश किसानों के पास सीमित भूमि होने के कारण केवल फसल उत्पादन से परिवार की वर्षभर की आय एवं रोजगार आवश्यकताओं की पूर्ति करना कठिन हो जाता है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, संसाधनों के क्षरण तथा कृषि लागत में निरंतर वृद्धि ने इन चुनौतियों को और अधिक गंभीर बना दिया है।ऐसी परिस्थितियों में समेकित कृषि प्रणाली (Integrated Farming System&IFS) किसानों के लिए एक व्यवहारिक, लाभकारी एवं टिकाऊ विकल्प के रूप में उभर रही है। समेकित कृषि प्रणाली का मूल सिद्धांत खेत पर उपलब्ध विभिन्न संसाधनों एवं कृषि उद्यमों का वैज्ञानिक एकीकरण कर अधिकतम उत्पादन, आय एवं संसाधन उपयोग दक्षता प्राप्त करना है। इसमें फसल उत्पादन के साथ पशुपालन, बागवानी, मत्स्य पालन, मशरूम उत्पादन, कुक्कुट पालन, वर्मी कम्पोस्ट तथा अन्य सहायक उद्यमों को जोड़ा जाता है। इस प्रणाली में एक घटक से निकलने वाला अवशेष दूसरे घटक के लिए संसाधन का कार्य करता है, जिससे अपशिष्ट कम होता है तथा पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण बढ़ता है। परिणामस्वरूप उत्पादन लागत घटती है, मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है तथा पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा मिलता है।

धान अथवा गन्ना आधारित फसल प्रणालियों के साथ डेयरी, मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन तथा अन्य कृषि उद्यमों को जोड़कर किसानों की आय और रोजगार के अवसरों में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। समेकित कृषि प्रणाली (Integrated Farming System&IFS) फसल सघनीकरण, विविधीकरण तथा सहायक उद्यमों के एकीकरण के माध्यम से प्रति इकाई क्षेत्र एवं प्रति इकाई समय अधिक आर्थिक उत्पादन प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती है। यह प्रणाली पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण को बढ़ावा देती है, जिससे उत्पादन लागत में कमी आती है, कृषि प्रणाली की स्थिरता बढ़ती है तथा रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है। इसके अतिरिक्त, यह परिवार के सदस्यों के लिए वर्षभर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराती है। समेकित कृषि प्रणाली के अनेक पारिस्थितिकीय एवं आर्थिक लाभ हैं, क्योंकि इसमें खेत एवं उससे जुड़े संसाधनों का अधिकतम एवं कुशल उपयोग किया जाता है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है तथा कृषि अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं पर्यावरण–अनुकूल बनती है। इसलिए समेकित कृषि प्रणाली को टिकाऊ कृषि विकास तथा कृषि वृद्धि दर में स्थायी सुधार प्राप्त करने के लिए एक प्रभावी विकल्प माना जाता है।गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली पूर्वी उत्तर प्रदेश की परिस्थितियों में विशेष रूप से उपयुक्त है। गन्ना एक लंबी अवधि (10–12 माह) की फसल है, जिसके साथ दलहनी, तिलहनी, सब्जी एवं चारा फसलों को अंतरवर्ती रूप में उगाया जा सकता है। साथ ही गन्ने की पत्तियाँ एवं अन्य अवशेष पशुपालन, वर्मी कम्पोस्ट निर्माण तथा मल्चिंग में उपयोग किए जा सकते हैं। डेयरी, बकरी पालन, कुक्कुट पालन, बागवानी एवं मशरूम उत्पादन जैसे उद्यमों के समावेश से किसानों को आय के अनेक स्रोत प्राप्त होते हैं तथा वर्षभर रोजगार उपलब्ध रहता है। इस प्रकार गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली केवल एक उत्पादन प्रणाली नहीं, बल्कि संसाधन संरक्षण, पोषण सुरक्षा,

जोखिम प्रबंधन तथा ग्रामीण समृद्धि का एक समग्र मॉडल है।वर्तमान समय में जब कृषि क्षेत्र को लाभकारी, टिकाऊ एवं जलवायु–सहिष्णु बनाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है, तब पूर्वी उत्तर प्रदेश में गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली किसानों की आय दोगुनी करने, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने की दिशा में एक प्रभावी रणनीति सिद्ध हो सकती है।

2. पूर्वी उत्तर प्रदेश में गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली की आवश्यकता

पूर्वी उत्तर प्रदेश में कृषि मुख्यतः छोटे एवं सीमांत किसानों द्वारा संचालित की जाती है, जिनके पास सीमित भूमि एवं संसाधन उपलब्ध होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में केवल एक या दो फसलों पर आधारित पारंपरिक खेती किसानों की आय एवं आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने में पर्याप्त नहीं है। कृषि लागत में निरंतर वृद्धि, श्रम की उपलब्धता में कमी, प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण तथा जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न अनिश्चितताओं ने कृषि को अधिक जोखिमपूर्ण बना दिया है। इसलिए ऐसी कृषि प्रणाली की आवश्यकता है जो सीमित संसाधनों से अधिक उत्पादन एवं आय प्रदान कर सके।गन्ना पूर्वी उत्तर प्रदेश की एक महत्वपूर्ण नगदी फसल है, जिसकी अवधि लगभग 10–12 माह होती है। इस लंबी अवधि के दौरान गन्ने की कतारों के मध्य उपलब्ध स्थान तथा खेत के अन्य संसाधनों का उपयोग दलहनी, तिलहनी, सब्जी एवं चारा फसलों के उत्पादन के लिए किया जा सकता है। इससे भूमि उपयोग दक्षता बढ़ती है तथा किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। साथ ही, गन्ना आधारित प्रणाली में पशुपालन, बकरी पालन, कुक्कुट पालन, मशरूम उत्पादन, बागवानी एवं वर्मी कम्पोस्ट जैसे सहायक उद्यमों को जोड़कर वर्षभर आय एवं रोजगार के अवसर सृजित किए जा सकते हैं।

गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण पक्ष कृषि अवशेषों एवं स्थानीय संसाधनों का पुनर्चक्रण है। गन्ने की पत्तियाँ, फसल अवशेष तथा पशुधन से प्राप्त गोबर एवं मूत्र का उपयोग जैविक खाद, वर्मी कम्पोस्ट तथा अन्य उपयोगी उत्पादों के निर्माण में किया जा सकता है। इससे उत्पादन लागत कम होती है तथा पोषक तत्वों का खेत के भीतर ही पुनः उपयोग संभव हो पाता है। परिणामस्वरूप मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ती है, मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है तथा रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है।इसके अतिरिक्त, गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली जल उपयोग दक्षता बढ़ाने तथा कृषि उत्पादन को अधिक जलवायु–सहिष्णु बनाने में भी सहायक है। विभिन्न कृषि एवं सहायक उद्यमों के एकीकरण से किसानों की आय के अनेक स्रोत विकसित होते हैं, जिससे बाजार मूल्यों में उतार–चढ़ाव अथवा किसी एक फसल की विफलता से होने वाले जोखिम कम हो जाते हैं। इस प्रकार गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसानों के लिए आय वृद्धि, संसाधन संरक्षण, पोषण सुरक्षा एवं टिकाऊ कृषि विकास का एक प्रभावी माध्यम सिद्ध हो सकती है।

3. गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली में स्थानीय संसाधनों एवं उद्यमों का एकीकरण

समेकित कृषि प्रणाली का मूल आधार विभिन्न कृषि एवं सहायक उद्यमों का ऐसा एकीकरण है, जिसमें एक घटक से प्राप्त उत्पाद अथवा अवशेष दूसरे घटक के लिए उपयोगी संसाधन का कार्य करता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में गन्ना आधारित कृषि प्रणाली इस दृष्टि से अत्यंत उपयुक्त है, क्योंकि यहाँ फसल उत्पादन, पशुपालन, बागवानी तथा अन्य कृषि उद्यमों को स्थानीय संसाधनों के आधार पर प्रभावी ढंग से जोड़ा जा सकता है। इससे न केवल उत्पादन एवं आय में वृद्धि होती है, बल्कि संसाधनों का कुशल उपयोग एवं पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण भी सुनिश्चित होता है।

3.1 फसल घटक

गन्ना इस प्रणाली का मुख्य घटक होता है। गन्ने की लंबी अवधि तथा चौड़ी कतारों के कारण इसके साथ विभिन्न अंतरवर्ती फसलों का समावेश किया जा सकता है। गन्ने के साथ मूंग, उड़द एवं अरहर जैसी दलहनी फसलें उगाने से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है तथा जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से मृदा उर्वरता में सुधार होता है। इसी प्रकार सरसों जैसी तिलहनी फसलें तथा मौसमी सब्जियाँ गन्ने के साथ लगाकर भूमि उपयोग दक्षता बढ़ाई जा सकती है। फसल विविधीकरण से जोखिम कम होता है तथा किसानों को विभिन्न स्रोतों से आय प्राप्त होती है।

3.2 पशुपालन

गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली में पशुपालन एक महत्वपूर्ण उद्यम है। देशी अथवा संकर गाय, भैंस एवं बकरी पालन को फसल उत्पादन के साथ जोड़ा जा सकता है। गन्ने की पत्तियाँ, शीर्ष भाग तथा अन्य फसल अवशेष पशुओं के चारे के रूप में उपयोग किए जा सकते हैं। पशुओं से प्राप्त दूध किसानों को नियमित आय प्रदान करता है, जबकि गोबर एवं मूत्र का उपयोग जैविक खाद, वर्मी कम्पोस्ट तथा बायोगैस उत्पादन में किया जा सकता है। इस प्रकार पशुपालन कृषि प्रणाली की आर्थिक एवं पारिस्थितिकीय स्थिरता को मजबूत बनाता है।

3.3 कुक्कुट एवं बत्तख पालन

कुक्कुट एवं बत्तख पालन छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए कम लागत वाला लाभकारी उद्यम है। यह परिवार को अंडे एवं मांस के रूप में उच्च गुणवत्ता वाला पोषण उपलब्ध कराता है तथा अतिरिक्त आय का स्रोत भी बनता है। कुक्कुट एवं बत्तखों से प्राप्त मल–मूत्र का उपयोग जैविक खाद निर्माण में किया जा सकता है, जिससे पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण बढ़ता है।

FAARD FOUNDATION फार्ड फाउण्डेशन
FOUNDATION FOR ADVANCEMENT OF AGRICULTURE AND RURAL DEVELOPMENT
कृषि प्रगति एवं ग्रामीण विकास संस्था
कृषि, ग्रामीण विकास, शिक्षा, पर्यावरण, स्वास्थ्य व उद्यमिता की दिशा में समर्पित

3.4 मशरूम उत्पादन

पूर्वी उत्तर प्रदेश में उपलब्ध कृषि अवशेषों का उपयोग मशरूम उत्पादन के लिए प्रभावी रूप से किया जा सकता है। गन्ने की सूखी पत्तियाँ तथा अन्य फसल अवशेष मशरूम उत्पादन के लिए उपयुक्त माध्यम का कार्य करते हैं। मशरूम उत्पादन से कम स्थान एवं कम समय में अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। साथ ही, उपयोग के बाद बचा हुआ सब्सट्रेट उत्कृष्ट जैविक खाद के रूप में खेतों में प्रयोग किया जा सकता है।

3.5 वर्मी कम्पोस्ट एवं जैविक खाद उत्पादन

गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली में वर्मी कम्पोस्ट इकाई पोषक तत्व पुनर्चक्रण का प्रमुख केंद्र होती है। गोबर, गन्ने की पत्तियाँ, फसल अवशेष तथा अन्य जैविक पदार्थों का उपयोग वर्मी कम्पोस्ट एवं जैविक खाद बनाने में किया जाता है। इससे मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ती है, मृदा संरचना में सुधार होता है तथा रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है। इसके अतिरिक्त किसानों को जैविक खाद की बिक्री से अतिरिक्त आय भी प्राप्त हो सकती है।

3.6 बागवानी घटक

फलदार वृक्षों का समावेश गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली को और अधिक लाभकारी बनाता है। अमरूद, पपीता, सहजन, नींबू तथा अन्य फलदार पौधों को खेत की मेड़ों अथवा उपयुक्त स्थानों पर लगाया जा सकता है। ये वृक्ष परिवार की पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के साथ–साथ दीर्घकालिक एवं स्थिर आय का स्रोत भी प्रदान करते हैं। सहजन जैसे बहुउपयोगी वृक्षों की पत्तियाँ एवं फल पोषण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं तथा बाजार में भी इनकी अच्छी मांग रहती है।इस प्रकार गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली में फसल उत्पादन, पशुपालन, कुक्कुट पालन, मशरूम उत्पादन, जैविक खाद निर्माण तथा बागवानी जैसे विभिन्न उद्यमों का समन्वित एकीकरण किसानों की आय, रोजगार एवं संसाधन उपयोग दक्षता में वृद्धि करता है। साथ ही यह प्रणाली कृषि को अधिक टिकाऊ, लाभकारी एवं जलवायु–सहिष्णु बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

4. पोषक तत्व पुनर्चक्रण–समेकित कृषि प्रणाली की आधारशिला

समेकित कृषि प्रणाली (Integrated Farming System&IFS) की सफलता का सबसे महत्वपूर्ण आधार विभिन्न कृषि उद्यमों के मध्य पोषक तत्वों का प्रभावी पुनर्चक्रण है। पारंपरिक कृषि प्रणालियों में फसल एवं पशुधन से उत्पन्न अधिकांश अवशेषों को अनुपयोगी समझकर नष्ट कर दिया जाता है, जबकि समेकित कृषि प्रणाली में इन्हीं अवशेषों को मूल्यवान संसाधन के रूप में उपयोग किया जाता है। इससे उत्पादन लागत कम होती है, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है तथा कृषि प्रणाली की दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित होती है।

गन्ने की पत्तियों एवं अन्य फसल अवशेषों का पुनर्चक्रण मृदा स्वास्थ्य सुधारने में विशेष भूमिका निभाता है। गन्ना कटाई के बाद खेत में उपलब्ध पत्तियों को जलाने के बजाय मल्चिंग अथवा कम्पोस्ट निर्माण में उपयोग करने से मृदा में जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है। इससे मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता तथा सूक्ष्मजीव गतिविधियों में सुधार होता है। साथ ही मृदा में जैविक कार्बन का स्तर बढ़ने से कार्बन संचयन को बढ़ावा मिलता है तथा कृषि प्रणाली अधिक जलवायु–सहिष्णु बनती है।पोषक तत्व पुनर्चक्रण का एक प्रमुख लाभ रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता में कमी है। जब खेत के भीतर उपलब्ध जैविक संसाधनों का प्रभावी उपयोग किया जाता है, तब नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश जैसे पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा पुनः फसलों को उपलब्ध हो जाती है। इससे उर्वरकों पर होने वाला खर्च कम होता है तथा उत्पादन लागत घटती है। इसके अतिरिक्त जैविक स्रोतों से प्राप्त पोषक तत्व धीरे–धीरे उपलब्ध होते हैं, जिससे उनकी उपयोग दक्षता बढ़ती है और पर्यावरणीय प्रदूषण की संभावना कम होती है।

(ICAR &IIFSR) मोदीपुरम द्वारा विकसित समेकित कृषि प्रणाली मॉडलों के अध्ययन से भी पोषक तत्व पुनर्चक्रण के महत्वपूर्ण लाभ सामने आए हैं। विभिन्न मॉडलों में फसल अवशेषों, गोबर तथा अन्य जैविक अपशिष्टों के पुनः उपयोग द्वारा कुल पोषक तत्व आवश्यकता का लगभग 30–40 प्रतिशत भाग खेत के भीतर ही उपलब्ध कराया जा सका। एकीकृत कृषि प्रणाली मॉडल में प्रतिवर्ष पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश का पुनर्चक्रण दर्ज किया गया, जिससे बाहरी उर्वरकों की आवश्यकता में उल्लेखनीय कमी आई। यह न केवल आर्थिक दृष्टि से लाभकारी सिद्ध हुआ, बल्कि मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण

योगदान प्रदान करता है।इस प्रकार पोषक तत्व पुनर्चक्रण गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली का केंद्रीय स्तंभ है, जो कृषि को अधिक लाभकारी, संसाधन–कुशल, पर्यावरण–अनुकूल एवं टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्तमान समय में जब उर्वरकों की लागत निरंतर बढ़ रही है और मृदा स्वास्थ्य चिंता का विषय बना हुआ है, तब पोषक तत्व पुनर्चक्रण आधारित समेकित कृषि प्रणाली किसानों के लिए एक प्रभावी एवं व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करती है।

5. गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली के लाभ

गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली केवल एक उत्पादन प्रणाली नहीं है, बल्कि यह किसानों की आर्थिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय आवश्यकताओं को एक साथ पूरा करने वाली समग्र कृषि पद्धति है। इसमें फसल उत्पादन के साथ पशुपालन, बागवानी, कुक्कुट पालन, मशरूम उत्पादन, वर्मी कम्पोस्ट तथा अन्य सहायक उद्यमों का समावेश किया जाता है। विभिन्न घटकों के बीच संसाधनों के आदान–प्रदान एवं पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण के कारण यह प्रणाली पारंपरिक एकल फसल आधारित खेती की तुलना में अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ सिद्ध होती है।

5.1 आर्थिक लाभ

गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ किसानों को आय के अनेक स्रोत उपलब्ध कराना है। पारंपरिक खेती में किसान मुख्यतः एक या दो फसलों की आय पर निर्भर रहते हैं, जबकि समेकित कृषि प्रणाली में गन्ने के साथ पशुपालन, सब्जी उत्पादन, बागवानी, कुक्कुट पालन तथा अन्य उद्यमों से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। इससे किसानों को वर्षभर नकद प्रवाह (Cash Flow) बना रहता है तथा किसी एक फसल अथवा उद्यम में नुकसान होने की स्थिति में अन्य घटक आर्थिक सुरक्षा प्रदान करते हैं।

इस प्रणाली में कृषि अवशेषों, पशु अपशिष्टों एवं अन्य स्थानीय संसाधनों का पुनर्चक्रण किया जाता है, जिससे रासायनिक उर्वरकों, चारे तथा अन्य बाहरी आदानों पर होने वाला व्यय कम होता है। परिणामस्वरूप उत्पादन लागत घटती है तथा शुद्ध लाभ में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न उद्यमों के संचालन के लिए वर्षभर श्रम की आवश्यकता होती है, जिससे परिवार के सदस्यों को निरंतर रोजगार मिलता है और अतिरिक्त मजदूरी व्यय में भी कमी आती है।

5.2 कृषि एवं पर्यावरणीय लाभ

गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली मृदा स्वास्थ्य संरक्षण एवं प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फसल अवशेषों, गोबर एवं अन्य जैविक पदार्थों के उपयोग से मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ती है, जिससे मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता तथा सूक्ष्मजीव गतिविधियों में सुधार होता है। दलहनी फसलों के समावेश से जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण को बढ़ावा मिलता है तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है।

पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण के कारण उनकी उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है तथा रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है। इसके अतिरिक्त फसल विविधीकरण एवं विभिन्न कृषि उद्यमों के समावेश से कृषि जैव विविधता को बढ़ावा मिलता है, जिससे कीट एवं रोगों का प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है। जैविक कार्बन संचयन तथा रासायनिक आदानों के संतुलित उपयोग के कारण यह प्रणाली पर्यावरण संरक्षण एवं जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक सिद्ध होती है।

5.3 सामाजिक लाभ

समेकित कृषि प्रणाली ग्रामीण परिवारों के सामाजिक एवं पोषण संबंधी विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है। डेयरी, कुक्कुट पालन, मशरूम उत्पादन, सब्जी उत्पादन तथा वर्मी कम्पोस्ट जैसी गतिविधियों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी रहती है, जिससे उनकी आर्थिक भूमिका एवं निर्णय क्षमता मजबूत होती है। परिवार को दूध, फल, सब्जियाँ, अंडे एवं अन्य पोषक खाद्य पदार्थ स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होने से पोषण सुरक्षा में सुधार होता है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न कृषि एवं सहायक उद्यमों के कारण ग्रामीण युवाओं के लिए स्वरोजगार एवं उद्यमिता के नए अवसर विकसित होते हैं। इससे ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन की प्रवृत्ति कम हो सकती है तथा स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली किसानों की आर्थिक समृद्धि के साथ–साथ सामाजिक विकास एवं ग्रामीण आजीविका सुदृढ़ीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली आर्थिक लाभ, पर्यावरणीय संरक्षण तथा सामाजिक कल्याण के तीनों आयामों को एक साथ संबोधित करती है और पूर्वी उत्तर प्रदेश की कृषि को अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं जलवायु–सहिष्णु बनाने की दिशा में एक प्रभावी विकल्प प्रदान करती है।

6. पूर्वी उत्तर प्रदेश के लिए संभावित गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली मॉडल

पूर्वी उत्तर प्रदेश में अधिकांश कृषक छोटे एवं सीमांत वर्ग के हैं, जिनके पास भूमि एवं संसाधनों की उपलब्धता सीमित है। इसलिए क्षेत्र की परिस्थितियों के अनुसार ऐसे समेकित कृषि प्रणाली मॉडल विकसित करने की आवश्यकता है, जो उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए किसानों को वर्षभर आय, रोजगार एवं पोषण सुरक्षा प्रदान कर सकें। गन्ना एक लंबी अवधि की फसल होने के कारण इसके साथ विभिन्न फसलों एवं सहायक उद्यमों का सफलतापूर्वक एकीकरण किया जा सकता है। किसानों की आवश्यकता एवं संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर निम्नलिखित गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली मॉडल अपनाए जा सकते हैं।

6.1 मॉडल–1 गन्ना, मूंग, गेहूँ डेयरी, वर्मी कम्पोस्ट

यह मॉडल उन किसानों के लिए उपयुक्त है जो सीमित भूमि पर फसल एवं पशुपालन दोनों को अपनाना चाहते हैं। गन्ने के साथ मूंग की अंतरवर्ती खेती

अतिरिक्त आय के साथ–साथ जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायता करती है। गन्ना कटाई के बाद गेहूँ की खेती से भूमि का वर्षभर उपयोग सुनिश्चित होता है। डेयरी इकाई से नियमित नकद आय प्राप्त होती है, जबकि गोबर एवं फसल अवशेषों का उपयोग वर्मी कम्पोस्ट निर्माण में किया जाता है। यह मॉडल पोषक तत्व पुनर्चक्रण, मृदा स्वास्थ्य सुधार तथा आय वृद्धि के लिए अत्यंत प्रभावी है।

6.2 मॉडल–2 गन्ना मूंगफली (अंतरवर्ती फसल), डेयरी, वर्मी कम्पोस्ट

यह मॉडल पूर्वी उत्तर प्रदेश के उन किसानों के लिए उपयुक्त है जो गन्ने की उत्पादकता एवं लाभप्रदता बढ़ाने के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य में सुधार करना चाहते हैं। गन्ने की प्रारम्भिक वृद्धि अवधि के दौरान मूंगफली को अतिरिक्त अंतरवर्ती फसल के रूप में उगाया जा सकता है। मूंगफली एक दलहनी फसल होने के कारण वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती है, जिससे मृदा की उर्वरता में सुधार होता है तथा आगामी फसल के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, मूंगफली का अच्छा भूमि आवरण मृदा अपरदन को कम करता है, नमी संरक्षण में सहायता करता है तथा खरपतवारों की वृद्धि को भी नियंत्रित करता है। इस संस्थान द्वारा किए गए अध्ययनों में पाया गया है कि गन्ने की चौड़ी कतारों (120–150 सेमी) में मूंगफली की अंतरवर्ती खेती भूमि समतुल्य अनुपात संसाधन उपयोग दक्षता तथा कुल प्रणाली उत्पादकता को बढ़ाती है, जिससे प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

6.3 मॉडल–2 गन्ना, सब्जी–अंतरवर्ती फसल, डेयरी, बकरी पालन

यह मॉडल बाजार से जुड़े किसानों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है। गन्ने के साथ सब्जी उत्पादन से शीघ्र एवं नियमित आय प्राप्त होती है, जबकि डेयरी एवं बकरी पालन आय के अतिरिक्त स्रोत उपलब्ध कराते हैं। बकरी पालन अपेक्षाकृत कम निवेश में अधिक लाभ देने वाला उद्यम है तथा छोटे किसानों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। इस मॉडल से वर्षभर नकद प्रवाह बना रहता है तथा परिवार की पोषण सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है।

6.3 मॉडल–3 गन्ना दलहन मशरूम वर्मी कम्पोस्ट

सीमित संसाधनों वाले किसानों के लिए यह एक कम लागत वाला एवं पर्यावरण–अनुकूल मॉडल है। गन्ने के साथ दलहनी फसलों का समावेश मृदा उर्वरता में सुधार करता है तथा अतिरिक्त आय प्रदान करता है। गन्ने की सूखी पत्तियों एवं अन्य कृषि अवशेषों का उपयोग मशरूम उत्पादन में किया जा सकता है। मशरूम उत्पादन के बाद बचा हुआ अवशेष वर्मी कम्पोस्ट निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार यह मॉडल कृषि अपशिष्टों के प्रभावी उपयोग एवं पोषक तत्व पुनर्चक्रण का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

6.4 मॉडल–4 गन्ना सहजन, अमरूद डेयरी जैविक खाद इकाई

यह मॉडल दीर्घकालिक एवं स्थिर आय प्राप्त करने के उद्देश्य से विकसित किया जा सकता है। गन्ने के साथ सहजन, अमरूद अथवा अन्य फलदार वृक्षों का समावेश किसानों को अतिरिक्त आय एवं पोषण सुरक्षा प्रदान करता है। डेयरी इकाई से नियमित नकद आय प्राप्त होती है, जबकि गोबर एवं फसल अवशेषों का उपयोग जैविक खाद उत्पादन में किया जाता है। सहजन जैसे बहुउपयोगी वृक्षों की बाजार मांग भी तेजी से बढ़ रही है, जिससे इस मॉडल की आर्थिक व्यवहार्यता और अधिक बढ़ जाती है।

इन मॉडलों की विशेषता यह है कि इनमें फसल उत्पादन, पशुपालन, बागवानी तथा जैविक संसाधन प्रबंधन को एक–दूसरे से जोड़ा गया है। स्थानीय संसाधनों की उपलब्धता, बाजार की मांग तथा किसान की आर्थिक स्थिति के अनुसार इनमें आवश्यक संशोधन किए जा सकते हैं। इस प्रकार गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली के ये मॉडल पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसानों को अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं जलवायु–सहिष्णु कृषि अपनाने की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं।

7. गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली– चुनौतियाँ एवं सीमाएँ

यद्यपि गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली किसानों की आय बढ़ाने, संसाधनों के संरक्षण तथा कृषि को अधिक टिकाऊ बनाने की अपार संभावनाएँ रखती है, फिर भी इसके व्यापक प्रसार एवं सफल क्रियान्वयन के सामने अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। इन चुनौतियों की पहचान एवं समाधान के बिना इस प्रणाली के लाभों का पूर्ण दोहन संभव नहीं है।सबसे प्रमुख चुनौती प्रारंभिक निवेश की आवश्यकता है। समेकित कृषि प्रणाली में फसल उत्पादन के साथ पशुपालन, बागवानी, मशरूम उत्पादन, वर्मी कम्पोस्ट इकाई अथवा अन्य सहायक उद्यमों को जोड़ने के लिए अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होती है। छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए सीमित संसाधनों के कारण प्रारंभिक निवेश करना कई बार कठिन हो जाता है। पशुओं की खरीद, शेड निर्माण, सिंचाई सुविधाओं का विकास तथा अन्य आवश्यक अव–संरचनाओं की व्यवस्था के लिए वित्तीय सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

8. निष्कर्ष

पूर्वी उत्तर प्रदेश में गन्ना केवल एक प्रमुख नगदी फसल नहीं है, बल्कि यह क्षेत्र की कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था, ग्रामीण रोजगार तथा कृषि उद्योगों का महत्वपूर्ण आधार भी है। हालाँकि बढ़ती उत्पादन लागत, प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव, जलवायु परिवर्तन की चुनौतियाँ तथा छोटे एवं सीमांत किसानों की आर्थिक सीमाएँ पारंपरिक गन्ना उत्पादन प्रणाली की स्थिरता पर प्रश्नचिह्न खड़े कर रही हैं। ऐसे परिदृश्य में गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली किसानों के लिए एक व्यवहारिक, लाभकारी एवं टिकाऊ विकल्प के रूप में उभरकर सामने आई है। गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली में फसल उत्पादन के साथ पशुपालन, बागवानी, कुक्कुट पालन, मशरूम उत्पादन, वर्मी कम्पोस्ट तथा अन्य कृषि आधारित उद्यमों का वैज्ञानिक एकीकरण किया जाता है। इससे किसानों

को आय के अनेक स्रोत प्राप्त होते हैं, वर्षभर रोजगार एवं नकद प्रवाह बना रहता है तथा कृषि जोखिमों में कमी आती है। साथ ही, कृषि अवशेषों एवं पशु अपशिष्टों के पुनर्चक्रण से पोषक तत्वों का कुशल उपयोग संभव होता है, जिससे रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है तथा मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है। यह प्रणाली जैविक कार्बन संचयन, जैव विविधता संरक्षण तथा पर्यावरणीय संतुलन को भी बढ़ावा देती है।पूर्वी उत्तर प्रदेश की भौगोलिक एवं सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली के लिए अत्यंत अनुकूल हैं। स्थानीय संसाधनों, पारंपरिक ज्ञान तथा उपलब्ध कृषि उद्यमों के प्रभावी समन्वय द्वारा किसानों की आय में वृद्धि, पोषण सुरक्षा तथा संसाधन संरक्षण को एक साथ प्राप्त किया जा सकता है। विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए यह प्रणाली सीमित भूमि एवं संसाधनों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती है।भविष्य की कृषि को अधिक लाभकारी, टिकाऊ तथा जलवायु–सहिष्णु बनाने के लिए गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली को कृषि विकास रणनीतियों में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके लिए अनुसंधान संस्थानों, कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्रों तथा राज्य कृषि विभागों के सहयोग से क्षेत्र–विशिष्ट मॉडल विकसित कर किसानों तक पहुँचाना आवश्यक है। साथ ही प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता, गुणवत्तायुक्त आदानों की उपलब्धता तथा बाजार सुविधाओं को सुदृढ़ बनाकर इस प्रणाली के व्यापक प्रसार को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यदि इन प्रयासों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए, तो गन्ना आधारित समेकित कृषि प्रणाली पूर्वी उत्तर प्रदेश में किसानों की समृद्धि, कृषि की स्थिरता तथा ग्रामीण विकास का सशक्त माध्यम सिद्ध हो सकती है।

❖

धान की सीधी बुवाई के लाभ

डॉ0 सुधांशु सिंह, सुनील कुमार, पन्नीरसेलवम पेरमैयन, वी.के. यादव एवं आर.के. मलिक
अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, दक्षिण एशिया, क्षेत्रीय केन्द्र, वाराणसी, उ.प्र. भारत

धान, भारत की खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण आजीविका का प्रमुख आधार है, जहाँ देश वैश्विक उत्पादन में लगभग 28% और निर्यात में लगभग 40% योगदान देता है। भारत में टिकाऊ धान उत्पादन के लिए धान की सीधी बुवाई एक परिवर्तनकारी समाधान के रूप में तेजी से उभर रहा है, विशेष रूप से ऐसे समय में जब कृषि के क्षेत्र जल संकट, बढ़ती मजदूरी लागत और जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। धान की सीधी बुवाई में बीजों को गीली जुताई (पडलिंग) किए बिना सीधे खेत में बोया जाता है, जबकि पारंपरिक विधि में गीली जुताई (पडलिंग) किए गए खेत में नर्सरी से पौधों की रोपाई की जाती है। पारंपरिक धान उत्पादन पद्यति श्रम की अधिक मांग के कारण कम टिकाऊ और अर्थिक रूप से कम लाभकारी होती जा रही है।

धान की रोपाई पद्धति में खेतों को लगातार पानी से भरा रखने की आवश्यकता होती है, जिससे भूजल स्तर तेजी से गिरता है और ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ता है, जल की अधिक खपत और ऊर्जा उपयोग के कारण यह प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण पर भी नकारात्मक प्रभाव डालती है, इसलिए अधिक संसाधन–कुशल विकल्प अपनाना आवश्यक हो गया है। धान की सीधी बुवाई पद्धति से भारत की कृषि को एक सुरक्षित और समृद्ध भविष्य की दशा में आगे बढ़ाया जा सकता है।

इसी संदर्भ में, मशीन द्वारा धान की सीधी बुवाई एक व्यावहारिक और विस्तार योग्य समाधान प्रस्तुत करती है, जिसमें धान के बीज को सीधे खेत में बोया जाता है और नर्सरी तैयार करने, गीली जुताई (पडलिंग) करने और रोपाई जैसी प्रक्रियाओं की आवश्यकता नहीं होती। इससे खेती की प्रक्रिया सरल हो जाती है, संचालन में जटिलता कम होती है और समय पर बुवाई संभव हो पाती है। धान की सीधी बुवाई विधि में हवादार (एरोबक) मिट्टी की स्थिति में खेती की जाती है, जिससे लगभग 20–25% पानी की बचत होती है, और जल प्रबंधन बेहतर हो तो यह बचत 40% तक हो सकती है। यह तकनीक विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों के लिए अत्यंत उपयोगी है, जहाँ भूजल स्तर तेजी से गिर रहा है। धान की सीधी बुवाई का एक अन्य प्रमुख लाभ श्रम की आवश्यकता में कमी है। रोपाई पद्धति में नर्सरी तैयार करना, पौध उखाड़ना और हाथ से रोपाई करना अत्यंत श्रमसाध्य कार्य हैं। सीधी बुवाई में इन सभी प्रक्रियाओं की आवश्यकता नहीं होती है, जिससे श्रम पर निर्भरता कम होती है और बढ़ती मजदूरी तथा श्रमिकों की कमी की समस्या से किसानों को राहत मिलती है। इससे न केवल मेहनत कम होती है, बल्कि समय पर फसल की बुवाई भी सुनिश्चित होती है, जो अच्छी उपज के लिए आवश्यक है।

धान की सीधी बुवाई अर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत लाभकारी है। इस तकनीक को अपनाने से किसान प्रति हेक्टेयर लगभग रु. 8000 से रु. 10000 तक की लागत बचा सकते हैं, क्योंकि इसमें श्रम, सिंचाई और ऊर्जा पर कम खर्च होता है। यह लागत में कमी सीधे किसानों की शुद्ध आय और लाभ में वृद्धि करती है, विशेष कर छोटे और सीमांत किसानों के लिए यह बहुत फायदेमंद है।

इसके साथ ही, विभिन्न अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि इस पद्धति से प्राप्त उपज पारंपरिक विधि के बराबर या उससे अधिक हो सकती है, खासकर जब रोपाई में देरी होती है। उदाहरण के लिए, पूर्वी उत्तर प्रदेश में खरीफ 2025 के दौरान किए गए परीक्षणों के अंतर्गत सीधी बुवाई पद्धति में औसत उपज 6.27 टन प्रति हेक्टेयर दर्ज की गई, जबकि रोपाई पद्धति में यह 5.60 टन प्रति हेक्टेयर थी, जो स्पष्ट रूप से उत्पादन में बढ़त को दर्शाती है।

धान की सीधी बुवाई फसल प्रणाली की उत्पादकता को भी बेहतर बनाती है, विशेष रूप से धान–गेहूं प्रणाली। चूंकि इस विधि में धान की फसल जल्दी तैयार हो जाती है, इसलिए गेहूं की समय पर बुवाई संभव होती है, जिससे अंतिम चरण में गर्मी (टर्मिनल हीट) के प्रभाव से बचाव होता है। अध्ययनों में पाया गया है कि धान की सीधी बुवाई के बाद बोए गए गेहूं की उपज लगभग 9% तक बढ़ सकती है। इससे पूरी फसल प्रणाली की उत्पादकता और किसानों की कुल आय में वृद्धि होती है। गीली जुताई (पडलिंग) मट्टी के भौतिक गुणों को नुकसान पहुँचाती है, जिससे धान की फसल के बाद बोई गई फसलों की उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

धान की सीधी बुवाई पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। पारंपरिक जलमग्न धान की खेती मीथेन उत्सर्जन का प्रमुख स्रोत है, जो एक हानिकारक ग्रीनहाउस गैस है। इस विधि में जलभराव न होने के कारण ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में लगभग 70% तक कमी आती है और वैश्विक ताप वृद्धि क्षमता (ग्लोबल वार्मिंग पोटेंशियल) में लगभग 35% की कमी होती है। इस प्रकार, धान की सीधी बुवाई जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एक महत्वपूर्ण जलवायु स्मार्ट तकनीक के रूप में उभर रही है। इसके अतिरिक्त, बासमती धान की प्रजातियों में बकाने रोग, जो फ्यूजेरियम फ्यूजिकुरोई (Fusarium fujikuroi) नामक कवक के कारण होता है, धान की सीधी बुवाई पद्धति में रोपाई विधि की तुलना में कम पाया जाता है, जिससे फसल का स्वास्थ्य बेहतर रहता है और अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

इसके अतरिक्त, यह विधि किसानों के लिए कार्बन क्रेडिट के माध्यम से अतिरिक्त आय के अवसर भी प्रदान करती है। इस तकनीक को अपनाकर किसान प्रति हेक्टेयर लगभग 2.5 कार्बन क्रेडिट अर्जित कर सकते हैं, जिससे उन्हें अतिरिक्त अर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है। यह टिकाऊ खेती और आय वृद्धि के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी स्थापित करता है।

इस विधि का एक अन्य महत्वपूर्ण लाभ मिट्टी के स्वास्थ्य पर इसका सकारात्मक प्रभाव है। पारंपरिक रोपाई विधि में खेत में गीली जुताई (पडलिंग) करने से मिट्टी की संरचना को नुकसान होता है, जबकि सीधी बुवाई पद्धति में यह समस्या नहीं होती। इससे मिट्टी की भौतिक गुणवत्ता बेहतर बनी रहती है और अगली फसल जैसे गेहूं, दलहन और तिलहन के उत्पादन में वृद्धि होती है। साथ ही, इस विधि से कृषि में मशीनीकरण को बढ़ावा मिलता है, जैसे बिजाई मशीन व अन्य आधुनिक उपकरणों का उपयोग, जिससे श्रम की आवश्यकता कम होती है और युवाओं तथा कृषि उद्यमियों के लिए नए अवसर उत्पन्न होते हैं।

वर्तमान में धान की सीधी बुवाई भारत के लगभग 14–15% धान क्षेत्र में अपनाई जा रही है और विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में इसके सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं। पंजाब, ओडिशा, छत्तीसगढ़ और पूर्वी उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में किसानों ने पानी की बचत, लागत में कमी और उत्पादन में सुधार के लाभ अनुभव किए हैं। आने वाले वर्ष में इसके तेजी से विस्तार की संभावना है। सीधी बुवाई धान की खेती में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का प्रतीक है, जो जल संकट, बढ़ती लागत और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतयों का समग्र समाधान प्रदान करती है। यह तकनीक किसानों की आय बढ़ाने, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और कृषि प्रणाली को अधिक टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

धान की रोपाई

मशीन द्वारा धान की सीधी बुवाई

धान की फसल सीधी बुवाई के 20 दिन बाद

खरीफ मौसम में सब्जियों की वैज्ञानिक खेती कैसे करें

हरे कृष्ण, सिद्धार्थ कुमार सिंह एवं राजेश कुमार
भा.कृ.अनु.प.दृ भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान,
वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

खरीफ के मौसम (जून से अक्टूबर) के दौरान सब्जियों की उपलब्धता अक्सर सीमित हो जाती है, जब बाजार में इनके मूल्य बढ़ जाते हैं। यदि किसान वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग कर खरीफ के मौसम में सफलतापूर्वक सब्जियों का उत्पादन करें, तो उन्हें बेहतर आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है। खरीफ के मौसम में अनेक प्रकार की सब्जियों की खेती की जा सकती है। इनमें पत्तेदार सब्जियाँ (चौलाई, पालक आदि), फलदार सब्जियाँ (भिण्डी, मिर्च), दलहनी सब्जियाँ (लोबिया) तथा कद्दूवर्गीय सब्जियाँ (लौकी, करेला, खीरा, चिकनी तोरई, नसदार तोरई आदि) प्रमुख हैं। भाकृअनुप–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा विकसित अनेक उन्नत किस्मों ने सब्जी उत्पादन में नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। इन किस्मों में उच्च उपज क्षमता, बेहतर गुणवत्ता, रोग एवं कीटों के प्रति अपेक्षाकृत सहनशीलता तथा विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के अनुकूलता जैसे गुण पाए जाते हैं। खरीफ मौसम में इन उन्नत किस्मों का उपयोग कर किसान अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

भूमि का चयन– खरीफ मौसम की सब्जियों की सफल खेती के लिए खेत का उचित चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामान्यतः ऐसी भूमि का चयन करना चाहिए जहाँ वर्षा का अतिरिक्त पानी आसानी से निकल सके तथा जलभराव की समस्या न हो। लौकी, करेला, खीरा, चिकनी तोरई, नसदार तोरई तथा अन्य कद्दूवर्गीय सब्जियों के लिए अच्छी जल निकास वाली जीवांशयुक्त बलुई दोमट अथवा दोमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। इन फसलों की जड़ें जलभराव के प्रति संवेदनशील होती हैं, इसलिए मेड़ एवं नाली प्रणाली अपनाना लाभकारी रहता है। भिण्डी और मिर्च की खेती के लिए भी कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध, भुरभुरी एवं अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। विशेष रूप से मिर्च में जलभराव से जड़ गलन एवं मुरझान जैसी समस्याएँ बढ़ जाती हैं, इसलिए खेत में अतिरिक्त जल निकास की व्यवस्था अनिवार्य है।

लोबिया अपेक्षाकृत हल्की से मध्यम दोमट मिट्टी में अच्छी वृद्धि करती है तथा इसकी जड़ों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायुमंडलीय नत्रजन स्थिरीकरण में सहायक होते हैं। चौलाई तथा अन्य पत्तेदार सब्जियाँ विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती हैं, किन्तु जैविक पदार्थों से समृद्ध, उपजाऊ एवं अच्छी जल निकास वाली भूमि में उनकी वृद्धि तथा उत्पादन बेहतर होता है।

मृदा अभिक्रिया (पीएच) की दृष्टि से अधिकांश खरीफ सब्जियाँ 6.0 से 7.0 के बीच की हल्की अम्लीय से उदासीन मिट्टी में अच्छी तरह से उगाई जा सकती हैं। लौकी, करेला, तोरई एवं खीरा जैसी कद्दूवर्गीय फसलों के लिए पीएच 6.0–7.0 तथा लोबिया के लिए 6.0–7.5 उपयुक्त माना जाता है। अतः खेती प्रारम्भ करने से पूर्व मृदा परीक्षण कराना लाभकारी रहता है, जिससे पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा आवश्यक सुधारात्मक उपायों का निर्धारण किया जा सके।

खेत की तैयारी– गहरी जुताई के बाद 2–3 बार देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी बना लेना चाहिए। अंतिम जुताई के समय सड़ी हुई गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट मिट्टी में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। सामान्यतः 20–30 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद का प्रयोग लाभकारी पाया गया है। जैविक पदार्थ मिट्टी की संरचना में सुधार करते हैं, जल धारण क्षमता बढ़ाते हैं तथा लाभकारी सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को प्रोत्साहित करते हैं। खरीफ मौसम में समतलीकरण का विशेष महत्व है। असमतल खेतों में कहीं जलभराव तो कहीं नमी की कमी की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसलिए खेत को अच्छी तरह समतल कर नालियों की व्यवस्था करनी चाहिए ताकि अतिरिक्त वर्षा जल आसानी से बाहर निकल सके। खरीफ मौसम में अधिकांश सब्जियों की खेती उठी हुई क्यारियों अथवा मेड़ों पर करने की सलाह दी जाती है। पत्तेदार सब्जियों, मिर्च तथा भिण्डी की खेती उठी हुई क्यारियों पर की जा सकती है, जबकि लौकी, करेला, खीरा तथा तोरई जैसी बेल वाली फसलों की बुवाई मेड़ों पर करना अधिक उपयुक्त रहता है। सामान्यतः 60–75 से.मी. चौड़ी क्यारियाँ तथा उनके बीच 30–40 से.मी. चौड़ी नालियाँ बनाई जाती हैं। इससे अतिरिक्त वर्षा जल शीघ्र निकल जाता है और पौधों की वृद्धि बेहतर होती है।

खरीफ मौसम की प्रमुख सब्जियों की उन्नत किस्में– खरीफ मौसम में सफल सब्जी उत्पादन के लिए उन्नत एवं क्षेत्र विशेष के अनुकूल किस्मों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा विकसित अनेक उच्च उत्पादक एवं गुणवत्तायुक्त किस्में किसानों के बीच लोकप्रिय हैं। पत्तेदार सब्जियों में चौलाई की 'काशी सुहावनी' व 'काशी चौलाई –1' प्रमुख किस्म है, जो अधिक उपज देने वाली तथा आकर्षक हरी पत्तियों के लिए जानी जाती हैं। लोबिया में 'काशी कंचन', 'काशी निधि', 'काशी उन्नति' तथा 'काशी विशान' प्रमुख किस्में हैं, जिनमें 'काशी विशान' विषाणुजनित रोगों के प्रति अपेक्षाकृत सहनशील मानी जाती है।

कद्दूवर्गीय सब्जियों में लौकी की 'काशी गंगा', 'काशी बहार', 'काशी किरण', 'काशी कुण्डल', 'काशी कीर्ति' तथा 'काशी शुभ्रा'य करेला की 'काशी मयूरी' व 'काशी प्रतिष्ठा'य खीरा की 'काशी नूतन'य नसदार तोरई की 'काशी शिवानी', 'काशी खुशी' व 'काशी नन्दा' तथा चिकनी तोरई की 'काशी श्रेया', 'काशी कल्याणी', 'काशी रक्षिता', 'काशी दिव्या' व 'काशी सौम्या' प्रमुख उन्नत किस्में हैं। भिण्डी में 'काशी क्रांति', 'काशी पराक्रम', 'काशी सहिष्णु', 'काशी सातधारी' तथा 'काशी ललिमा' किसानों द्वारा व्यापक रूप से अपनाई जा रही हैं। मिर्च में 'काशी आभा', 'काशी तेज', 'काशी अनमोल', 'काशी सुर्ख', 'काशी सिंदूरी' तथा 'काशी रत्ना' उच्च उत्पादन, बेहतर फल गुणवत्ता एवं विभिन्न क्षेत्रों में अनुकूल प्रदर्शन के लिए जानी जाती हैं।

बुवाई का समय एवं बीज दर– खरीफ मौसम में अधिकांश सब्जियों की बुवाई जून–जुलाई में की जाती है। भिण्डी की बुवाई हेतु 8–10 किग्रा., लोबिया के लिए 12–20 किग्रा., चौलाई के लिए 1.5–2.0 किग्रा., करेला के लिए 5–6 किग्रा., तथा खीरा के लिए 1.0–1. 5 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। नसदार एवं चिकनी तोरई के लिए 3–4 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। लौकी की बुवाई जून–जुलाई में की जाती है। लौकी की खेती सीधी बुवाई अथवा प्रोट्रे में पौध तैयार कर रोपाई दोनों विधियों से की जा सकती है। सीधी बुवाई हेतु 2.5–3.0

FAARD FOUNDATION फाई फाउण्डेशन
FOUNDATION FOR ADVANCEMENT OF AGRICULTURE AND RURAL DEVELOPMENT
कृषि प्रगति एवं ग्रामीण विकास संस्था

कृषि, ग्रामीण विकास, शिक्षा, पर्यावरण, स्वास्थ्य व उद्यमिता की दिशा में समर्पित
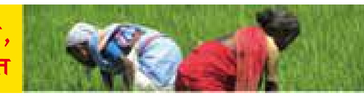

किग्रा. तथा प्रोट्रे/पॉलीबैग में पौध तैयार करने हेतु लगभग 1.5 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। मिर्च की खेती सामान्यतः पौधशाला में पौध तैयार कर रोपाई द्वारा की जाती है, जिसके लिए सामान्य किस्मों में 250–300 ग्राम तथा संकर किस्मों में 300–400 ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

बुवाई एवं रोपाई की विधि– चूंकि चौलाई के बीज बहुत छोटे होते हैं इसलिए इन्हें बालू या मिट्टी के साथ मिलाकर बीज सर्वत्र एक समान भूमि की तैयारियों में छिड़क देते हैं या 20–25 सेमी. की दूरी पर कतारों में बुवाई करते हैं। बीज को आधा से एक सेमी. गहराई तक बोना चाहिए। कतारों की बुवाई के बाद खाली स्थान पर ध्यान रखना चाहिए तथा जहाँ स्थान खाली रह जाये वहाँ पौधों को निकालकर रोपण भी किया जा सकता है। पहली कटाई के बाद बीज की बुवाई पुनः नहीं की जा सकती है क्योंकि अच्छी तरह से बढ़ नहीं पाती है। भिण्डी की बुवाई सामान्यतः 45–60×30 सेमी दूरी पर कतारों में की जाती है। लोबिया को 60×15 सेमी दूरी पर बोया जाता है। लौकी, करेला, खीरा, चिकनी तोरई तथा नसदार तोरई जैसी बेलदार फसलों की बुवाई मेड़ों अथवा नालियों पर की जाती है। करेला में कतार से कतार दूरी 1.5–2.5 मीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 45–60 सेमी रखी जाती है। खीरा में लगभग 1.5 मीटर की दूरी पर मेड़ बनाकर गड्ढों में 2–3 बीज बोए जाते हैं। तोरई वर्गीय फसलों में 2.5–3.0 मीटर की दूरी पर नालियाँ बनाकर गड्ढों में दो–दो बीज बोना उपयुक्त रहता है। फसल की बुवाई मेड़ों पर की जाती है तथा वर्षा ऋतु में 4.0–4.5 मीटर की दूरी पर मेड़ें बनाकर उनकी दोनों किनारियों पर लगभग 60–75 सेमी की दूरी पर 2–2 बीज बोए जाते हैं। अंकुरण के बाद प्रत्येक स्थान पर एक स्वस्थ पौधा रखा जाता है। मिर्च की पौध तैयार होने पर 60–75 सेमी 45–50 सेमी दूरी पर रोपाई की जाती है।

पोषण प्रबंधन– खरीफ मौसम की विभिन्न सब्जी फसलों में पोषक तत्वों की आवश्यकता फसल की प्रकृति, वृद्धि अवधि तथा उत्पादन क्षमता के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है। सामान्यतः सभी फसलों में खेत की तैयारी के समय पर्याप्त मात्रा में सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए, जिससे मृदा की संरचना, जलधारण क्षमता तथा सूक्ष्मजीवी गतिविधियाँ बेहतर होती हैं। चौलाई हेतु बुवाई के 3–4 सप्ताह पहले 20–25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद, मिट्टी में मिला देना चाहिए। खेत के प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र में 100 ग्राम नत्रजन, 50 किग्रा. फास्फोरस एवं 30 किग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है। फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा और आधी मात्रा नत्रजन खेत में बुवाई के समय दें तथा शेष आधा नत्रजन बराबर मात्रा में बाँटकर प्रत्येक कटाई के बाद छिड़क कर डालते रहें।

लोबिया की अच्छी फसल के लिए 20–25 टन कम्पोस्ट अथवा सड़ी गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर खेत में मिलानी चाहिए। इसके साथ 30 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फास्फोरस तथा 60 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय तथा शेष नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के लगभग 25 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए।

भिण्डी में 20–25 टन सड़ी गोबर की खाद के साथ 100 किग्रा. नत्रजन, 50 किग्रा. फास्फोरस एवं 50 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। नत्रजन की एक–तिहाई मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के पूर्व मिट्टी में मिला देनी चाहिए, जबकि शेष नत्रजन को दो बराबर भागों में बाँटकर बुवाई के 30 एवं 60 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिए।

मिर्च की सामान्य किस्मों के लिए 25 टन सड़ी गोबर की खाद के साथ 60 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फास्फोरस तथा 30 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। नत्रजन को तीन समान भागों में विभाजित कर रोपाई के 30, 60 एवं 90 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिए। संकर (हाइब्रिड) किस्मों में 30 टन गोबर की खाद तथा 60:80:80 किग्रा. नत्रजन फास्फोरस: पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। इनमें 30:80:80 किग्रा. आधारीय खाद के रूप में तथा शेष 30 किग्रा. नत्रजन को 30, 60 एवं 90 दिन बाद समान भागों में देना चाहिए। बेहतर फल गुणवत्ता के लिए पोटाश का प्रयोग पोटैशियम सल्फेट के रूप में करना लाभकारी पाया गया है।

कद्दूवर्गीय सब्जियों में लौकी के लिए 25–30 टन सड़ी गोबर की खाद, 50 किग्रा. नत्रजन, 35 किग्रा. फास्फोरस एवं 30 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय दी जाती है, जबकि शेष नत्रजन को 4–5 पत्ती अवस्था तथा पुष्पन से पूर्व टॉप ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिए। करेला में 20–25 टन गोबर की खाद के साथ 50 किग्रा. नत्रजन, 25–30 किग्रा. फास्फोरस तथा 20–30 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। नत्रजन की एक–तिहाई मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय दी जाती है, जबकि शेष नत्रजन को बुवाई के 30 एवं 45 दिन बाद जड़ों के पास टॉप ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिए। चिकनी तोरई एवं नसदार तोरई के लिए 20–25 टन सड़ी गोबर की खाद के साथ 30–35 किग्रा. नत्रजन, 25–30 किग्रा. फास्फोरस तथा 25–30 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के समय मेड़ों पर दी जाती है, जबकि शेष नत्रजन को दो बराबर भागों में बाँटकर बुवाई के 20 एवं 40 दिन बाद गुड़ाई के साथ देकर मिट्टी चढ़ा दी जाती है।

इन सभी फसलों में जैविक खादों, जैव उर्वरकों तथा मृदा परीक्षण आधारित संतुलित उर्वरक प्रबंधन को अपनाने से पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता बढ़ती है, उत्पादन में वृद्धि होती है तथा मृदा स्वास्थ्य दीर्घकाल तक बेहतर बना रहता है।

सिंचाई एवं जल प्रबंधन– खरीफ मौसम में पर्याप्त वर्षा होने के बावजूद सब्जी फसलों में जल प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वर्षा का वितरण प्रायः असमान रहता है। सामान्यतः वर्षाकालीन फसलों में अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है, किन्तु वर्षा के लंबे अंतराल की स्थिति में फसल की आवश्यकता के अनुसार सिंचाई करनी चाहिए। दूसरी ओर, लगातार वर्षा होने पर खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था अनिवार्य है, क्योंकि अधिकांश सब्जी फसलें जलभराव को सहन नहीं कर पातीं।

लौकी, करेला, खीरा, चिकनी तोरई तथा नसदार तोरई जैसी कद्दूवर्गीय सब्जियों में वर्षा ऋतु के दौरान सामान्यतः सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु वर्षा के अभाव में 7–15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। इन फसलों में नालियों एवं मेड़ों की व्यवस्था अतिरिक्त जल निकास के लिए अत्यंत उपयोगी होती है। गर्मी के मौसम में इन फसलों को 4–6 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ सकती है। बेलों की तीव्र वृद्धि, पुष्पन तथा फल विकास के समय पर्याप्त नमी बनाए रखना आवश्यक है।

भिण्डी, मिर्च तथा पत्तेदार सब्जियाँ नमी की कमी के प्रति अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील होती हैं। भिण्डी में अंकुरण एवं प्रारम्भिक वृद्धि के लिए पर्याप्त नमी आवश्यक है, जबकि फलन अवस्था में नियमित सिंचाई उत्पादन बढ़ाने में सहायक होती है। मिर्च में

रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए तथा बाद में आवश्यकता अनुसार सिंचाई देते रहना चाहिए। फल बनने की अवस्था में नमी की कमी से फूल एवं फल झड़ने की समस्या बढ़ सकती है। लोबिया में भी बुवाई के समय पर्याप्त नमी आवश्यक होती है, किन्तु जलभराव इसकी वृद्धि को गंभीर रूप से प्रभावित करता है।

जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए ड्रिप सिंचाई प्रणाली अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है। इसके माध्यम से पानी सीधे जड़ क्षेत्र तक पहुँचता है, जिससे जल की बचत होती है तथा उर्वरकों का फर्टिगेशन द्वारा कुशल उपयोग संभव हो पाता है। विशेषकर कद्दूवर्गीय सब्जियों एवं मिर्च में ड्रिप सिंचाई से बेहतर वृद्धि, अधिक उपज तथा उच्च गुणवत्ता प्राप्त होती है। इसके साथ जैविक अथवा प्लास्टिक मल्च का उपयोग मिट्टी की नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण, मृदा कटाव में कमी तथा फल गुणवत्ता सुधारने में सहायक होता है।

समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन– खरीफ मौसम में सब्जी फसलों में कीट एवं रोगों का प्रकोप अपेक्षाकृत अधिक रहता है। इनके प्रभावी प्रबंधन के लिए समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, जिसमें सर्वप्रथम कर्षण, यांत्रिक, जैविक एवं व्यवहारिक उपायों को प्राथमिकता दी जाती है। रासायनिक नियंत्रण को केवल पूरक उपाय के रूप में अपनाना चाहिए और उसका प्रयोग तभी करना चाहिए जब कीट अथवा रोग का प्रकोप आर्थिक क्षति स्तर से ऊपर पहुँच जाए।

कद्दूवर्गीय सब्जियों जैसे लौकी, करेला, खीरा एवं तोरई में फल मक्खी सबसे महत्वपूर्ण कीटों में से एक है। इसके नियंत्रण के लिए खेत में 25–30 क्यूल्योर ट्रैप प्रति हेक्टेयर स्थापित करना, संक्रमित फलों को एकत्र कर नष्ट करना, नीम बीज खली अर्क (4%) अथवा एजाडिरैक्टिन आधारित उत्पादों का उपयोग करना तथा मचान पद्धति अपनाना प्रभावी पाया गया है। गंभीर प्रकोप की स्थिति में अनुशंसित कीटनाशियों का सीमित एवं सावधानीपूर्वक उपयोग किया जा सकता है। फल मक्खी नियंत्रण में चारा (बेट) छिड़काव भी प्रभावी सिद्ध हुआ है, किन्तु तुड़ाई योग्य फसलों में प्रतीक्षा अवधि का पालन अनिवार्य है। इसी प्रकार लाल कद्दू भृंग के नियंत्रण हेतु गहरी जुताई, कीटों को हाथ से एकत्र कर नष्ट करना तथा नीम आधारित उत्पादों का प्रयोग लाभकारी होता है। अत्यधिक प्रकोप होने पर अनुशंसित कीटनाशियों का सीमित उपयोग किया जा सकता है। कद्दूवर्गीय फसलों में मृदुल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू) एवं चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू) प्रमुख रोग हैं, जिनकी रोकथाम के लिए उचित पौध दूरी, मचान पद्धति, संक्रमित पत्तियों का निष्कासन तथा ट्राइकोडर्मा आधारित जैव उत्पादों का उपयोग प्रभावी रहता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में अनुशंसित कवकनाशियों का छिड़काव लाभकारी होता है, परंतु प्रतिरोधकता की समस्या से बचने के लिए एक ही समूह के कवकनाशियों का लगातार उपयोग नहीं करना चाहिए।

भिण्डी में तना एवं फल छेदक प्रमुख हानि पहुँचाने वाला कीट है। इसके प्रबंधन हेतु फेरोमोन ट्रैप, संक्रमित शाखाओं एवं फलों की नियमित तुड़ाई, बैसिलस थुरिंजिएन्सिस आधारित जैव– कीटनाशियों तथा ट्राइकोग्रामा परजीवी का उपयोग किया जा सकता है। यदि कीट का प्रकोप आर्थिक क्षति स्तर से अधिक हो जाए, तो अनुशंसित कीटनाशियों का छिड़काव किया जा सकता है। मांहू, हरा फुदका एवं सफेद मक्खी जैसे रस–चूसक कीटों के नियंत्रण के लिए पीले चिपचिपे ट्रैप, नीम तेल या एजाडिरैक्टिन आधारित उत्पाद तथा खेत को खरपतवार मुक्त रखना उपयोगी उपाय हैं। गंभीर संक्रमण की स्थिति में चयनात्मक कीटनाशियों का प्रयोग किया जा सकता है। भिण्डी का पीला शिरा मोजेक रोग एक विषाणुजनित रोग है, जिसका प्रत्यक्ष उपचार संभव नहीं है। इसलिए रोगग्रस्त पौधों को तुरंत हटाना, सफेद मक्खी का नियंत्रण करना तथा सहनशील किस्मों का उपयोग करना ही इसका सर्वोत्तम प्रबंधन है।

मिर्च की फसल में थ्रिप्स, माइट तथा फल छेदक प्रमुख कीट हैं। थ्रिप्स के नियंत्रण के लिए नीले चिपचिपे ट्रैप, नीम आधारित उत्पादों का उपयोग तथा नियमित निगरानी प्रभावी रहती है। माइट (फसल मकड़ी) की समस्या को संतुलित पोषण, पौधों पर धूल न जमने देने तथा जैविक उत्पादों के प्रयोग द्वारा काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। फल छेदक के प्रबंधन में फेरोमोन ट्रैप, बैसिलस थुरिंजिएन्सिस आधारित जैव उत्पाद तथा संक्रमित फलों को नष्ट करना महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर अनुशंसित कीटनाशियों अथवा एकारिसाइड का प्रयोग किया जा सकता है। मिर्च में पर्णकुंचन (लीफ कर्ल) रोग के प्रबंधन के लिए रोगग्रस्त पौधों को हटाना, स्वस्थ पौध का उपयोग करना तथा सफेद मक्खी जैसे वाहक कीटों का प्रभावी नियंत्रण आवश्यक है।

लोबिया में फली छेदक प्रमुख कीट है, जिसके नियंत्रण के लिए फेरोमोन ट्रैप, बैसिलस थुरिंजिएन्सिस तथा ब्यूवेरिया बेसियाना जैसे जैव–नियंत्रण एजेंट प्रभावी सिद्ध हुए हैं। आवश्यकता पड़ने पर अनुशंसित कीटनाशियों का सीमित उपयोग किया जा सकता है। लोबिया के मोजेक रोग की रोकथाम के लिए रोगग्रस्त पौधों को हटाना, वाहक कीटों का नियंत्रण तथा स्वस्थ बीज का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है।

पत्तेदार सब्जियों में सामान्यतः मांहू एवं पत्ती खाने वाले कीटों की समस्या देखी जाती है। इनके नियंत्रण के लिए नीम बीज अर्क, पीले चिपचिपे ट्रैप तथा खेत की स्वच्छता बनाए रखना प्रभावी उपाय हैं। खरीफ मौसम में सब्जियों की वैज्ञानिक खेती किसानों को कम समय में अधिक उत्पादन एवं बेहतर आर्थिक लाभ प्रदान कर सकती है। इसके लिए क्षेत्रानुकूल उन्नत किस्मों का चयन, गुणवत्तायुक्त बीजों का उपयोग, संतुलित पोषण प्रबंधन, उचित जल निकास, समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन तथा पर्यावरण–अनुकूल तकनीकों को अपनाना आवश्यक है।

अरहर की उन्नत उत्पादन तकनीक एवं समेकित कीट-रोग प्रबंधन : पूर्वी उत्तर प्रदेश के परिपेक्ष में

राज कुमार मिश्रा
प्रधान वैज्ञानिक, फसल सुरक्षा विभाग
भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर

अरहर (केजानस कजान) भारत की प्रमुख दलहनी फसल है, जो प्रोटीन का उत्कृष्ट स्रोत होने के साथ–साथ मृदा उर्वरता बढ़ाने में भी सहायक है। पूर्वी उत्तर प्रदेश की वर्षा आधारित कृषि एवं अनुकूल जलवायु अरहर उत्पादन के लिए उपयुक्त है। यह फसल लघु एवं सीमांत किसानों की आय, पोषण सुरक्षा तथा फसल विविधीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। साथ ही, इसकी गहरी जड़ प्रणाली मृदा संरक्षण एवं जैविक नत्रजन स्थिरीकरण द्वारा कृषि प्रणाली को अधिक टिकाऊ बनाती है।अरहर में पाये जानेवाले प्रमुख पोषक तत्व जैसे प्रोटीन 22. 4:, कार्बोहाइड्रेट 59.1:, वसा 1.4:, रेशा 4.4: के अतिरिक्त अन्य पोषक तत्व जैसे कैल्शियम, फासफोरस, लोहा, थाइमिन, नियासीन एवं राइवोफ्लेवीन मुख्य हैं। अरहर ऊर्जा का भी मुख्य स्रोत है तथा इससे 337 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।

भारत विश्व का सर्वाधिक अरहर उत्पादक देश है, जहाँ वर्ष 2022–23 में लगभग 50.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल से 43.4 लाख टन अरहर का उत्पादन प्राप्त हुआ तथा औसत उत्पादकता 859 किग्रा/हेक्टेयर रही। उत्तर प्रदेश देश का प्रमुख अरहर उत्पादक राज्य है, जहाँ लगभग 4.9 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में अरहर की खेती की जाती है और राज्य का राष्ट्रीय उत्पादन में लगभग 35 प्रतिशत योगदान है।पूर्वी उत्तर प्रदेश के गंगा के मैदानी क्षेत्रों में प्रचलित धान–गेहूँ फसल प्रणाली में अरहर का विशेष महत्व है, क्योंकि यह फसल न केवल भूमि की उर्वरता बनाए रखने में सहायक है, बल्कि किसानों को अतिरिक्त आय का अवसर भी प्रदान करती है।

यद्यपि पूर्वी उत्तर प्रदेश में अरहर की खेती का क्षेत्रफल पर्याप्त है, फिर भी इसकी उत्पादकता संभावित स्तर से कम है। इसके प्रमुख कारण उन्नत उत्पादन तकनीकों का सीमित उपयोग, असंतुलित पोषण प्रबंधन, खरपतवारों की समस्या तथा विभिन्न कीटों एवं रोगों का प्रकोप हैं। फली छेदक कीट, फली मक्खी, उकठा (विल्ट) तथा बाँझपन मोजेक रोग जैसी समस्याएँ उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। अतः अरहर की उत्पादकता एवं लाभप्रदता बढ़ाने के लिए उन्नत उत्पादन तकनीकों के साथ समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन उपायों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। इस लेख में पूर्वी उत्तर प्रदेश की परिस्थितियों के अनुरूप अरहर की उन्नत उत्पादन तकनीकों तथा समेकित कीट–रोग प्रबंधन की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की गई है।

अरहर की खेती के लिए अनुशंसित उन्नत प्रजातियाँ–

किस्म	परिपक्वता अवधि (दिन)	औसत उपज (क्विं./हे.)	प्रमुख विशेषताएँ
आईपीए 15–2 (शारदा)	240–255	28–33	उच्च उपज देने वाली, उकठा (विल्ट) एवं बाँझपन मोजेक रोग (SMD) के प्रति मजबूत प्रतिरोधी।
आईपीए 203 (प्रकाश)	249–255	25828	सघन पौधा प्रकार, उकठा रोग प्रतिरोधी, अंतरवर्ती फसल प्रणाली के लिए उपयुक्त।
आईपीए 206 (गंगा)	245–250	25–26	देर से पकने वाली किस्म, बैंगनी रंग के आकर्षक दानों वाली।
आईपीए 15–06	150–160	21–24	शीघ्र पकने वाली नवीन किस्म, जिससे रबी फसलों की समय पर बुवाई संभव होती है।
पूसा अरहर–151	219–255	20–21	पूर्वी उत्तर प्रदेश में लोकप्रिय, मोटे दाने वाली, उकठा (विल्ट) एवं बाँझपन मोजेक रोग (SMD) के प्रति मजबूत प्रतिरोधी।
राजेन्द्र अरहर–2	247–257	19–20	गहरी जड़ प्रणाली तथा उकठा (विल्ट) एवं बाँझपन मोजेक रोग (SMD) के प्रति प्रतिरोधी।

बुआई की विधि–

मेड़ों पर बुआई करने से सिंचाई में पानी की

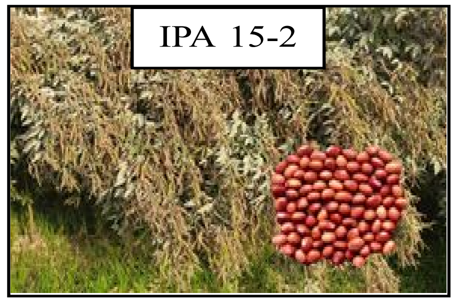

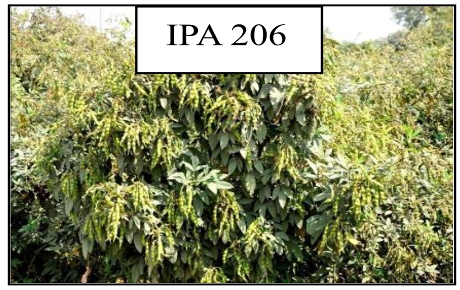

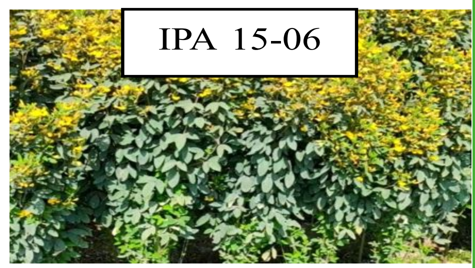

मात्रा में 25–30 प्रतिशत तक की बचत होती है। कूंडोंध्नाली द्वारा जल के अच्छे निकास से पौधों की बढ़वार अच्छी होती है, फाइटोफ्थोरा बीमारी का प्रकोप कम होता है तथा पौधों की वांछित संख्या बनी रहती है।

खरपतवार प्रबंधन–

अरहर की फसल में प्रारम्भिक 45–60 दिनों तक खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण अत्यंत आवश्यक होता है, क्योंकि इसी अवधि में खरपतवार फसल से नमी, पोषक तत्व एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। खरपतवार नियंत्रण हेतु बुवाई के तुरंत बाद तथा अंकुरण से पूर्व पेंडीमेथालिन 30 ई.सी. का 3.3 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, बुवाई के पूर्व फ्लूक्लोरालिन 45 ई.सी. का 2.0 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर (लगभग 1.0 किलोग्राम सक्रिय तत्व) की दर से छिड़काव कर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देने से भी खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। रासायनिक नियंत्रण के साथ–साथ आवश्यकता अनुसार एक या दो

बीजदर एवं अंतरण–

फसल का प्रकार	बीज दर (किग्रा / हेक्टे.)	पंक्ति से पंक्ति की दूरी (सेमी.)	पौधे से पौधे की दूरी (सेमी.)
अगेती अरहर	12–15	60–75	10–15
मध्यम अवधि एवं देर से पकने वाली अरहर	10–12	75–90	20–25
रबी–पूर्व (प्री–रबी) अरहर	12–15	30–40	8–10

निराई–गुड़ाई करने से खेत को खरपतवार मुक्त रखा जा सकता है तथा फसल की वृद्धि एवं उपज में वृद्धि होती है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में अरहर के प्रमुख रोग एवं **समेकित प्रबंधन**

1. उकठा रोग– उकठा रोग अरहर की सबसे महत्वपूर्ण एवं विनाशकारी बीमारियों में से एक है। यह रोग देश के लगभग सभी अरहर उत्पादक क्षेत्रों में पाया जाता है तथा फ्यूजेरियम उडम नामक कवक द्वारा उत्पन्न होता है। यह एक मृदा जनित रोग है,

- उकठा रोग के प्रमुख लक्षण
- रोग के प्रारम्भिक लक्षण सामान्यतः अक्टूबर–नवंबर माह में दिखाई देते हैं।
- रोग का अधिक प्रकोप फूल एवं फलियाँ बनने की अवस्था (जनवरी–फरवरी) में होता है।
- संक्रमित पौधे मुरझाने लगते हैं तथा उनकी पत्तियाँ पीली होकर सूख जाती हैं और झड़ने लगती हैं।
- रोग की उग्र अवस्था में तने के निचले भाग से ऊपर की ओर भूरी या गहरे भूरे रंग की धारियाँ दिखाई देती हैं।रोगग्रस्त पौधे खेत में दूर से ही सूखे एवं मुरझाए हुए दिखाई देते हैं।
- पौधे को उखाड़कर देखने पर जड़ों एवं तने के आधार भाग के संवहनी ऊतक (जाइलम) भूरे या काले रंग के दिखाई देते हैं। जड़ों से तने तक संवहनी ऊतकों का भूरा–काला रंग होना इस रोग की मुख्य पहचान है।

उकठा रोग का प्रबंधन

- खेत में अरहर फसल के पुराने एवं रोगग्रस्त अवशेषों को नहीं छोड़ना चाहिए तथा उन्हें नष्ट कर देना चाहिए।
- रोग के प्रभाव को कम करने के लिए उपयुक्त फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- मई–जून माह में जिस खेत में अरहर की बुवाई करनी हो, उसकी 2–3 बार गहरी जुताई करनी चाहिए।
- उकठा रोग की तीव्रता कम करने हेतु अरहर की ज्वार के साथ अंतरवर्ती खेती करना लाभकारी होता है।
- खेत में जलभराव न होने दें तथा उचित जल निकास व्यवस्था सुनिश्चित करें।

रोगरोधी एवं उकठा– प्रतिरोधी किस्मों का चयन करना चाहिए

1. बीजोपचार हेतु दलहनडर्मा– 10 ग्राम / कि. ग्रा. बीज अथवा फफूंदनाशी के रूप मे 2 ग्राम / कि. ग्रा. बीज प्रयोग करना चाहिए।

2. फाइटोफ्थोरा अंगमारी– यह रोग फाइटोफ्थोरा ड्रेक्सलेरी उपप्रजाति कजानी नामक मृदा जनित कवक द्वारा होता है।यह रोग मुख्यतः अरहर की प्रारम्भिक एवं मध्यावस्था की फसल में देखा जाता है।रोगग्रस्त पौधों के तने के निचले भाग पर भूरे अथवा काले रंग के धब्बे बनते हैं, जो धीरे–धीरे ऊपर की ओर फैल जाते हैं।रोग की तीव्र अवस्था में तने पर गांठ जैसी संरचना बन जाती है तथा पौधा टूटकर गिर सकता है। पत्तियों पर जलसिक्त धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में तनों तक फैल जाते हैं।

रोग के प्रसार हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ

- रोग का प्रकोप बुवाई के लगभग 50–60 दिनों तक की फसल में अधिक देखा जाता है।
- लगातार वर्षा, बूंदाबांदी तथा अधिक आर्द्रता रोग के विकास के लिए अत्यंत अनुकूल होती है।
- खेत में जलभराव अथवा जल निकास की समुचित व्यवस्था न होने पर रोग का संक्रमण तेजी से फैलता है।
- खेत के निचले भागों में, जहाँ पानी अधिक समय तक ठहरा रहता है, वहाँ रोग की तीव्रता अधिक होती है।

रोग का प्रबंधन

- फसल की प्रारम्भिक अवस्था (50–60 दिन) में खेत में जलभराव न होने दें तथा उचित जल निकास की व्यवस्था बनाए रखें।
- अरहर की बुवाई अच्छी जल निकासी वाले खेतों में मेड़ों पर करें।
- क्षेत्र विशेष के लिए अनुशंसित रोगरोधी अथवा सहनशील किस्मों का चयन करें।
- बुवाई से पूर्व बीजों को मेटालेक्सिल (2 ग्रामधकिग्रा बीज) अथवा बीजोपचार हेतु दलहनडर्मा / 10 ग्राम / कि. ग्रा. बीज अथवा फफूंदनाशी के रूप मे 2 ग्राम / कि. ग्रा. बीज प्रयोग करना चाहिए।

3. अल्टरनेरिया झुलसा– यह रोग अल्टरनेरिया प्रजाति के कवक द्वारा होता है। रोग के प्रारम्भिक चरण में पत्तियों पर भूरे अथवा काले रंग के संकेंद्रित वलयों (छल्लेदार धब्बों) वाले धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे धीरे–धीरे आकार में बढ़कर पूरी पत्ती में फैल जाते हैं।गंभीर संक्रमण की स्थिति में पत्तियाँ सूखकर झड़ जाती हैं, जिससे प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है।रोग की उग्र अवस्था में तनों एवं शाखाओं पर भी धब्बे दिखाई देने लगते हैं।

रोग चक्र एवं अनुकूल परिस्थितियाँ

- गर्म एवं आर्द्र मौसम अल्टरनेरिया झुलसा रोग के विकास एवं प्रसार के लिए अनुकूल होता है।
- अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में यह रोग अरहर की फसल को पर्याप्त क्षति पहुँचा सकता है।
- रोग का संक्रमण विशेष प्रकार की मौसमीय परिस्थितियों में अधिक देखा जाता है।
- यद्यपि यह रोग अधिकांश अरहर उत्पादक क्षेत्रों में पाया जाता है, फिर भी इसकी व्यापकता सामान्यतः सीमित रहती है।
- आर्थिक दृष्टि से यह रोग प्रायः कम महत्त्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसका प्रकोप प्रायः स्थानीय एवं सीमित स्तर पर ही देखा जाता है।

रोकथाम एवं प्रबंधन

- फसल की समय पर बुवाई करने से रोग का प्रकोप कम होता है।
- बुवाई के लिए सदैव स्वस्थ एवं रोगमुक्त बीज का चयन करें।
- क्षेत्र के लिए अनुशंसित रोगरोधी अथवा सहनशील किस्मों का उपयोग करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर मेन्कोजेब (डाइथेन एम–45) का 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 10–15 दिन के अंतराल पर 1–2 बार छिड़काव करें।

4. बाँझ रोग–

यह अरहर का अत्यंत महत्वपूर्ण रोग है। यह विषाणु (वायरस) द्वारा उत्पन्न होता है, जिसे अरहर बाँझता चितेरी विषाणु

के नाम से जाना जाता है।

इस रोग का प्रमुख लक्षण यह है कि पौधा बौना, झुरझुरा एवं हल्के रंग (धानी) का हो जाता है। पत्तियों का आकार सामान्य से काफी छोटा एवं पतला हो जाता है तथा उन पर अनियमित आकार की हल्की हरी एवं गहरी चित्तरियाँ पड़ जाती हैं। रोगग्रस्त पौधों में शाखाओं की संख्या स्वस्थ पौधों की तुलना में अधिक हो जाती है तथा रोगग्रस्त पौधे अन्य पौधों की अपेक्षा लंबाई में छोटे रह जाते हैं, जिससे वे झाड़ीनुमा दिखाई देने लगते हैं।

रोगग्रस्त पौधों में प्रजनन अंगों का विकास रुक जाता है, जिससे फूल एवं फलियाँ नहीं लगती हैं। इसी कारण इसे बाँझ रोग भी कहा जाता है। पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में (बुवाई से 45 दिन के अंदर) रोग का प्रकोप होने पर पूरा पौधा बाँझ हो जाता है तथा लगभग 95 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। देर से संक्रमण होने पर (45 दिनों के बाद) पौधा केवल आंशिक रूप से बाँझ होता है और नुकसान कम होता है। इस अवस्था को आंशिक बाँझता कहा जाता है। फसल पकने पर स्वस्थ पौधे परिपक्व होकर सूखने लगते हैं, जबकि रोगग्रस्त पौधे लंबे समय तक हरे दिखाई देते हैं।

रोकथाम एवं प्रबंधन

- संक्रमित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए, क्योंकि रोग का प्रसारण करने वाली माइट इन्हीं पौधों पर पनपती है।
- बीज को बुवाई से पहले इमिडाक्लोप्रिड नामक कीटनाशी रसायन से उपचारित करना चाहिए।
- खेत में बीमारी के प्रथम लक्षण दिखाई पड़ते ही मेटासिस्टॉक्स (0.1 प्रतिशत) का 10–15 दिन के अंतराल पर 2–3 बार छिड़काव करना चाहिए।
- बाँझ रोग–रोधी अरहर की प्रजातियाँ उपलब्ध हैं, अतः अपने क्षेत्र के लिए अनुशंसित बाँझ रोग–रोधी प्रजातियों की खेती करनी चाहिए

पूर्वी उत्तर प्रदेश में अरहर के प्रमुख कीट एवं समेकित प्रबंधन

1. फली भेदक (हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा)–

यह अरहर का प्रमुख एवं अत्यंत हानिकारक कीट है। यह प्रतिवर्ष लगभग 20–30 प्रतिशत तक उपज की हानि पहुँचा सकता है। इसकी बहुभक्षी प्रकृति, तीव्र प्रजनन क्षमता तथा अधिक पलायन क्षमता के कारण इसका प्रकोप तेजी से फैलता है। अनुकूल परिस्थितियों में यह कीट फसल को गंभीर क्षति पहुँचाकर उपज को अत्यधिक प्रभावित कर सकता है।

पहचान एवं क्षति के लक्षण

- इस कीट का प्रकोप सामान्यतः फरवरी–मार्च माह में तापमान बढ़ने के साथ बढ़ता है।
- सूंडियाँ फलियों में छेद करके विकसित हो रहे दानों को खाती हैं।
- एक सूंडी कई फलियों को क्षति पहुँचा सकती है, जिससे उपज एवं गुणवत्ता दोनों प्रभावित होती हैं।
- प्रायः कीट का प्रकोप तब स्पष्ट दिखाई देता है, जब फसल को पहले ही पर्याप्त क्षति पहुँच चुकी होती है।

जीवन चक्र

- इस कीट का जीवन चक्र लगभग 30–37 दिनों का होता है।
- इसकी चार अवस्थाएँ होती हैं–अण्डा, सूंडी, कोशक एवं पतंगा।
- मादा पतंगा अपने जीवनकाल में लगभग 500–1700 अण्डे देती है।
- अण्डों से 5–7 दिनों में सूंडियाँ निकलती हैं, जो 12–14 दिनों में कई बार केंचुल बदलते हुए विकसित होती हैं।
- पूर्ण विकसित सूंडी मिट्टी में जाकर कोशक अवस्था में परिवर्तित हो जाती है।
- 8–10 दिनों बाद कोशक से वयस्क पतंगा निकलकर पुनः प्रजनन करता है।

प्रबंधन

- ग्रीष्मकाल में खेत की गहरी जुताई करें, जिससे मिट्टी में छिपे कोशक नष्ट हो जाएँ।
- अरहर की बुवाई अनुशंसित समय पर करें (अगेती अरहर– 15–20 जून, पछेती अरहर– 15–20 जुलाई)।
- अरहर के साथ ज्वार की अंतरवर्ती खेती करने से कीट का प्रकोप कम होता है।
- कीट की निगरानी एवं नियंत्रण हेतु खेत में 5 फेरोमोन प्रपंच (ट्रैप) प्रति हेक्टेयर की दर से लगाएँ।

2. चित्तीदार फली भेदक (मारुका विटराटा)

यह फली छेदक कीट अगेती अरहर का प्रमुख हानिकारक कीट है। फसल में पुष्पीकरण के दौरान अधिक आर्द्रता वाले क्षेत्रों में इस कीट का प्रकेप अधिक होता है। चित्तीदार फली भेदक की सूँड़ी अरहर की कलियों, फूलों व फलियों एवं पत्तियों को मिलकर गुच्छा सा बना लेती हैं और अन्दर ही अन्दर पौधे के भागों को खाती रहती हैं।

लक्षण एवं क्षति

- चित्तीदार फली भेदक अगेती अरहर का प्रमुख हानिकारक कीट है।
- इसका प्रकोप पुष्पीकरण अवस्था में तथा अधिक आर्द्रता वाली परिस्थितियों में अधिक होता है।
- सूंडियाँ कलियों, फूलों, पत्तियों एवं फलियों को जाल बनाकर आपस में जोड़ देती हैं तथा भीतर से खाती रहती हैं।
- प्रभावित फूल भूरे होकर सूख जाते हैं और गिर जाते हैं।
- शीघ्र पकने वाली, चौड़ी पत्तियों तथा गुच्छेदार पुष्पक्रम वाली किस्में इस कीट के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं।

प्रबंधन

- अरहर की बुवाई 15 मई से 15 जून के मध्य करने से कीट का प्रकोप कम होता है।
- कीट की संख्या आर्थिक क्षति स्तर से अधिक होने पर अनुशंसित कीटनाशियों का प्रयोग करें।
- इण्डोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. (0.4 मि.ली. ध्लीटर पानी) अथवा स्पाइनोसाड 45 एस.सी. (0.2 मि.ली./लीटर पानी) का छिड़काव करें।
- कली बनने की अवस्था में क्लोरैन्ट्रानिलिप्रोल 18.5 एस.सी. (कोराजेन) 1 मि.ली.ध्लीटर पानी की दर से छिड़काव प्रभावी रहता है।

3. फली मक्खी (मेलानाग्रोमाइजा ऑब्ट्यूसा)–

अरहर की फली मक्खी उत्तर भारत में देर से पकने वाली अरहर की फसल का द्वितीय महत्वपूर्ण कीट हैं। यह ऐसा हानिकारक कीट है जिसकी सभी अवयस्क अवस्थायें जैसे अण्डा, सूंडी और कोषक अरहर की फली के अन्दर होती है। इस कारण फसल की हानि का सही अनुमान फसल की कटाई एवं पिटाई होने पर ही ज्ञात होता हैं इसलिये इस हानिकारक कीट को प्रबंधन कर पाना अपेक्षाकृत कठिन एवं दुसाध्य हैं।

लक्षण एवं क्षति

- फली मक्खी उत्तर भारत में देर से पकने वाली अरहर का प्रमुख कीट है।
- मादा मक्खी कोमल फलियों में अण्डे देती है तथा सूंडियाँ विकसित होते दानों को खाकर क्षति पहुँचाती हैं।
- सूंडियाँ दानों के भीतर सुरंग बनाकर रूण एवं स्टार्च को नष्ट कर देती हैं।
- प्रभावित फलियों में छोटे गोल छिद्र दिखाई देते हैं।
- क्षतिग्रस्त दानों में प्रायः फफूँदी संक्रमण हो जाता है, जिससे वे खाने एवं बीज के रूप में अनुपयुक्त हो जाते हैं।

❖

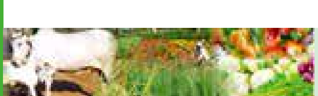

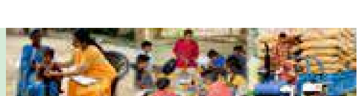

गतिविधियाँ

धान की सीधी बोआई से बढ़ेगी किसानों की आय

जागरण संवाददाता, धानापुर (चंदौली): किसानों, मजदूरों, महिलाओं एवं युवाओं के हितों में कार्यरत शिवनंदम फार्मर्स प्रोड्यूसर कंपनी खड़ान, धानापुर के तत्वावधान में फार्ड फाउंडेशन वाराणसी के सहयोग से खड़ान गांव में धान की सीधी बुआई (डीएसआर) विषयक एक दिवसीय प्रशिक्षण एवं जागरुकता कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में किसानों को आधुनिक खेती की तकनीकों तथा डीएसआर पद्धति के लाभों की विस्तृत जानकारी दी गई।

खड़ान में आयोजित गोष्ठी में किसानों को संबोधित करते कृषि वैज्ञानिक ● जागरण

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि काशी हिंदू विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. पंजाब सिंह ने कहा कि डीएसआर तकनीक से पानी, श्रम और लागत में कमी आती है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है। मुख्य अतिथि पूर्व कुलपति ने कहा कि आधुनिक कृषि तकनीकों को अपनाकर किसानों की आय बढ़ाई जा सकती है। कृषि विज्ञान केंद्र चंदौली के अध्यक्ष डा. नरेंद्र रघुवंशी ने केंद्र एवं सरकार द्वारा संचालित विभिन्न कृषि योजनाओं की जानकारी दी। कंपनी के निदेशक रमेश सिंह ने बताया कि फार्ड फाउंडेशन के सहयोग से पिछले चार वर्षों से क्षेत्र में डीएसआर पद्धति के तहत खेती कराई जा रही है।

उन्होंने बताया कि गुरेहू गांव के किसान दीपक राय ने पिछले वर्ष एक बीघा क्षेत्र में डीएसआर पद्धति से खेती की थी। बेहतर परिणाम मिलने के बाद इस वर्ष वह अपने पांच एकड़ क्षेत्र में पूरी तरह डीएसआर तकनीक से धान की खेती कर रहे हैं और धान की नर्सरी नहीं डाल रहे हैं। बीएचयू के वरिष्ठ वैज्ञानिक डा. संतोष कुमार सिंह ने किसानों एवं महिलाओं के बहुआयामी विकास तथा उन्नत कृषि तकनीकों पर विस्तार से प्रकाश डाला। अंतरराष्ट्रीय राइस रिसर्च इंस्टीट्यूट के वरिष्ठ वैज्ञानिक डा. सुनील कुमार तथा प्रो. बी.पी. सिंह ने किसानों को धान की सीधी बोआई एवं रोपाई की आधुनिक तकनीकों की जानकारी दी। कार्यक्रम के अंत में फार्ड फाउंडेशन के ट्रस्टी डा. उमेश सिंह ने उपस्थित किसानों एवं आयोजकों के प्रति आभार व्यक्त किया। इस दौरान गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर के पूर्व निदेशक प्रो. बी.पी. सिंह और बीएचयू के जनसंपर्क अधिकारी डा. राजेश कुमार के अलावा राजवंश सिंह, ओमप्रकाश सिंह, राम सिंह, राजेश सिंह, धीरज सिंह, बलवंत सिंह, नगीना यादव, शैलेंद्र पांडेय आदि थे।

ग्राम बहेरी, धानापुर में योगेंद्र यादव के प्लाट में D.S.R. कराते हुए शिवानन्दम F.P.O. खड़ान के निदेशक रमेश सिंह

यह प्लाट राजन सिंह ग्राम बहेरी विकास खण्ड धानापुर चंदौली का है जिनका D.S.R., 4 जून 2026 को फार्ड फाउंडेशन एवं इरी के सौजन्य से शिवानन्दम फॉर्मर्स प्रोड्यूसर कंपनी खड़ान के तत्वावधान में कराया गया था जिसका अवलोकन आज किसान के उपस्थिति में निदेशक रमेश सिंह ने किया।

FAARD FOUNDATION फार्ड फाउण्डेशन
FOUNDATION FOR ADVANCEMENT OF AGRICULTURE AND RURAL DEVELOPMENT
कृषि प्रगति एवं ग्रामीण विकास संस्था

फार्ड फाउण्डेशन के लिए प्रकाशक और मुद्रक प्रो. पंजाब सिंह द्वारा सरस्वती कुंज, नरायणपुर (डाफी) पोस्ट ऑफिस-नैपुरा, वाराणसी-221 011 (उ.प्र.), मेसर्स- बाबाश्री इण्टरप्राइजेज, पाण्डेयपुर वाराणसी-221002 मो. 9984818181 द्वारा मुद्रित, **प्रधान सम्पादकः** प्रो. आर. एम. सिंह